योगविद्या

वर्ष 14 अंक 9
सितम्बर 2025

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत

हरिः ॐ

योगविद्या का सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जाता है। इसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान के क्रियाकलापों की जानकारियाँ प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योग विद्या मासिक पत्रिका है।

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

© Bihar School of Yoga 2025

उपयोगी संसाधन

वेबसाइट :

www.biharyoga.net
www.sannyasapeeth.net
www.satyamyogaprasad.net

एप्प : (Android एवं iOS उपकरणों के लिए)
Bihar Yoga
APMB
YOGA (अंग्रेजी पत्रिका)
YOGAVIDYA (हिन्दी पत्रिका)
FFH (For Frontline Heroes)

कुल पृष्ठ संख्या : 56 *(कवर पृष्ठों सहित)*

कवर एवं प्लेट: श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

आध्यात्मिक मार्गदर्शन

सकारात्मक व्यवहार

हमेशा मुस्कुराते रहो, सेवा करते रहो, आनन्द के मोती बिखेरते रहो। मीठा बोलो, दुखियों को सहारा दो। मीठी वाणी से सुनने वाले को दिलासा मिलती है। एक करुणामयी दृष्टि, एक मीठा शब्द, एक अच्छा कर्म, एक मित्रवत् मुस्कान – इनसे आपका कुछ भी खर्च नहीं होता, लेकिन दूसरों को ऐसी खुशी मिलती है जो बेशुमार दौलत से भी नहीं खरीदी जा सकती। ये जीवन की अमूल्य निधियाँ हैं। करुणा और सद्भावना की भाषा को बहरा भी सुन सकता है, गूँगा भी समझ सकता है। जिस तरह जल की छोटी-छोटी बूँदों से विशाल सागर बनता है, उसी तरह छोटे-छोटे करुणामय सत्कर्मों से सद्भावना का सागर बनता है।

– श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर–811201, बिहार के लिए स्वामी शिवध्यानम् सरस्वती द्वारा प्रकाशित

स्वामित्व – बिहार योग विद्यालय **सम्पादक** – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योगविद्या

वर्ष 14 अंक 9 सितम्बर 2025
(प्रकाशन का 63वाँ वर्ष)

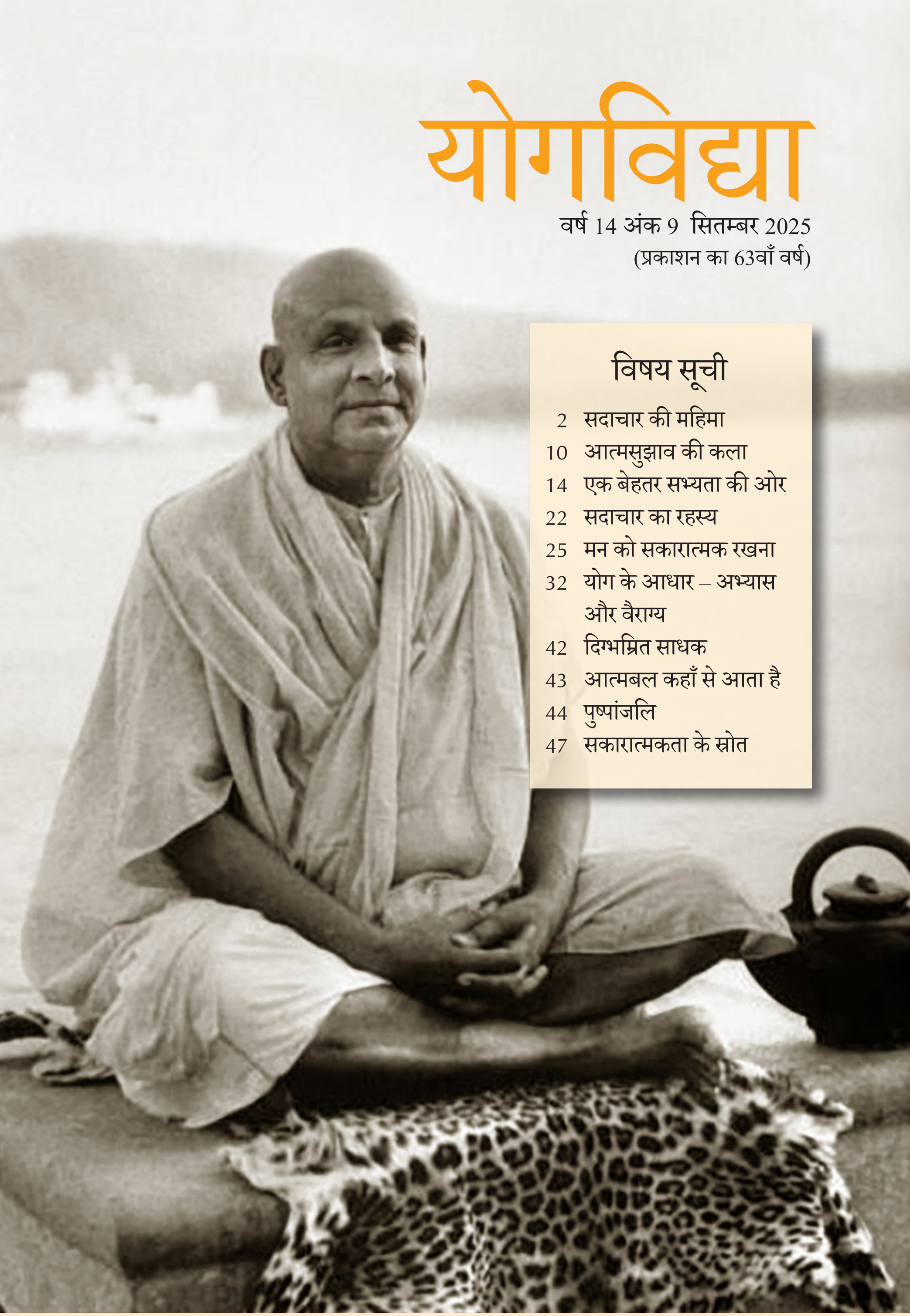

विषय सूची

2 सदाचार की महिमा
10 आत्मसुझाव की कला
14 एक बेहतर सभ्यता की ओर
22 सदाचार का रहस्य
25 मन को सकारात्मक रखना
32 योग के आधार – अभ्यास और वैराग्य
42 दिग्भ्रमित साधक
43 आत्मबल कहाँ से आता है
44 पुष्पांजलि
47 सकारात्मकता के स्रोत

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिक:। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन॥

सदाचार की महिमा

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

सद्गुणों का अभ्यास ही दिव्य-जीवन है। सीमित अर्थों में चरित्र की शुद्धि को ही सदाचार कहते हैं। सदाचारविहीन जीवन मृत्यु-तुल्य है। जो सदाचार नहीं करता, वह मरे व्यक्ति से भी गया बीता है।

बिना नैतिकता के आध्यात्मिक पथ में उन्नति हो ही नहीं सकती और बिना आध्यात्मिक उन्नति के मुक्ति अप्राप्य है। नैतिक पथ में पूर्णता पाये बिना सभी जिज्ञासु, घर छोड़ते ही तुरंत ध्यान तथा समाधि के पीछे भागने की भूल करते हैं। भले ही ध्यानाभ्यास करते-करते पन्द्रह वर्ष क्यों न व्यतीत हो जायें, पर उनका मन तो वैसा ही रहता है। उनमें वही ईर्ष्या, द्वेष, अहंकार तथा अभिमान आदि अवगुण रहते हैं। नैतिकता में पूर्णता पाये बिना ध्यान या समाधि अपने आप तो आ नहीं सकती।

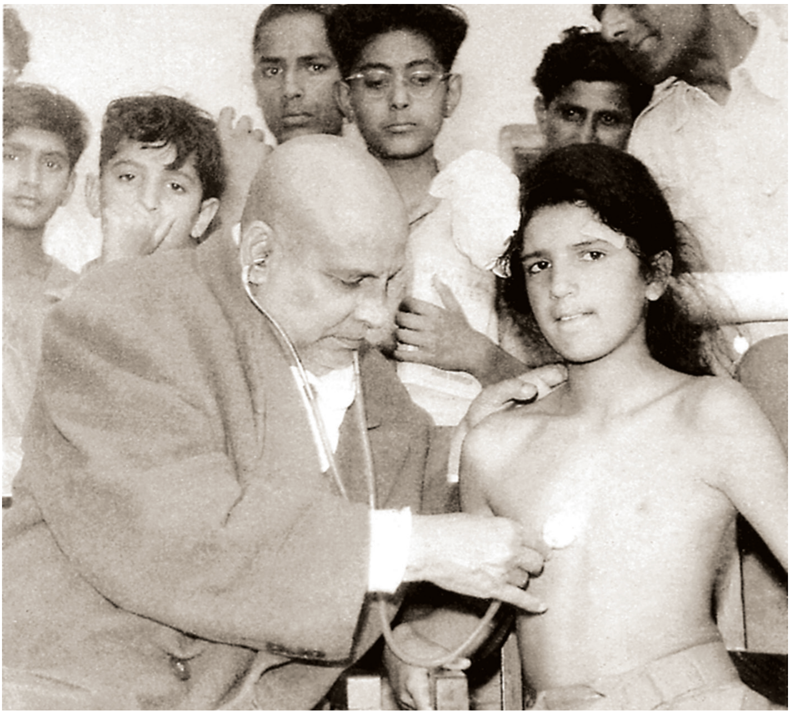

सदाचार तथा धर्म

सदाचार और नैतिकता आध्यात्मिक जीवन के आधार हैं। बिना नैतिकता के दर्शन तो मात्र अभिलाषा रह जाता है और धर्म अर्थ-विहीन आध्यात्मिकता का रूप ले लेता है। नैतिकताविहीन आध्यात्मिकता तो दंभ है। आध्यात्मिकता, धर्म और नैतिकता, तीनों पर्यायवाची शब्द हैं। इनमें भेद मानना भूल है।

आचरण में आए हुए धर्म को ही नैतिकता की संज्ञा दी जाती है। इसी प्रकार नैतिकतापूर्ण आचरण को ही धर्म कहते हैं। नैतिकता, धर्म पर आधारित है। धर्मविहीन नैतिकता उस वृक्ष के समान है जिसकी जड़ें ही नहीं हैं, उस घर के समान है जो रेत पर खड़ा है या उस नदी के समान है जिसका कोई उद्गम ही नहीं। इसलिए धर्मविहीन नैतिकता निराधार है, यह मात्र रीति-रिवाज ही रह जाती है। नैतिकता की नींव प्रभु-प्रेम पर आधारित होनी चाहिए। प्रभु-प्रेम बिना नैतिकता एक पतवारविहीन नौका के समान रह जाती है।

सदाचार – पूर्वी तथा पश्चिमी

सभी धर्मों ने नैतिकता पर बल दिया है – 'हिंसा मत करो', 'दूसरों को हानि मत पहुँचाओ', 'अपने पड़ोसी से अपने समान प्रेम करो', किन्तु पाश्चात्य धर्म इसके पीछे कारण नहीं बता पाये, क्योंकि पाश्चात्य आचार-नीति में आत्मा नाम की कोई वस्तु है ही नहीं। फलतः पाश्चात्य दर्शन में सदाचार उथला ही रह गया है। उसके केवल बाह्य रूप पर ही बल दिया जाता है। यह कुछ समाजसेवा, मानवता के उपकार और प्रेम तक ही सीमित रह जाता है। इसमें भले-बुरे की थोड़ी पहचान, उचित-अनुचित के थोड़े ज्ञान और आहार-विहार को ही पर्याप्त मान लिया जाता है। किन्तु सनातन धर्म के शास्त्रों में इसका स्वरूप अति सूक्ष्म, उत्कृष्ट तथा गहन है। यहाँ आचार-नीति का आधार वेदान्त का उच्च दर्शन है, जो चेतना की एकता के सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है।

आत्मा तो एक ही है। सबमें एक ही आत्मा का वास है। पशु-पक्षियों तथा सभी जीवों में एक ही आत्मा है। सबका एक ही चैतन्य स्वरूप है। जब भी तुम किसी प्राणी को दुःख देते हो, मानो अपने आपको दुःखाते हो। यदि किसी की सेवा भी करते हो, तो अपनी सेवा ही जानो। दूसरों की सेवा हमारा मन शुद्ध करती है और हृदय की शुद्धता से ही दैवी आलोक प्राप्त होता है, जो मुक्ति दिलाता है। यह है भारतीय आचार-शास्त्र। इसी मौलिक आधार पर सभी भारतीय धर्म-संहिताओं का निर्माण हुआ है।

पाश्चात्य आचार-शास्त्र में पूर्ण आत्म-संयम का पालन करने, दैवी सम्पदा का अर्जन करने तथा आसुरी सम्पत्ति को नष्ट करने पर बल नहीं दिया जाता। उसमें इन्द्रियों को वशीभूत रखने और तपस्या का कोई स्थान नहीं। पाश्चात्य आचार-शास्त्र मनुष्य को एक शुष्क दार्शनिक अवश्य बना सकता है, परन्तु एक ऋषि अथवा योगी कभी नहीं। इसके विपरीत पूर्वी आचार-शास्त्र गहन है। इसमें इन्द्रियों को पूर्णतया वश में रखने तथा तप को अत्यधिक महत्त्व दिया गया है। 'तप' और 'त्याग' की यहाँ महानता है। पूर्वी आचार-शास्त्र मनुष्य को दिव्यत्व प्रदान कर एक सक्रिय योगी तथा ज्ञानी बना देता है।

सदाचार के मार्गदर्शक

सदाचार के पथ पर संत जनों के उदाहरण, अपनी अन्तरात्मा, धर्मशास्त्र एवं स्थापित परम्पराएँ मार्गदर्शन करते हैं। अविकसित मानव अपना सुधार स्वयं नहीं कर पाता। स्वार्थ-भावना बुद्धि को ढक लेती है। लेशमात्र स्वार्थ भी भले-बुरे में भेद नहीं करने देता। इसके लिए शुद्ध, निर्मल तथा कुशाग्र बुद्धि की आवश्यकता होती है। इसलिए भगवान मनु, याज्ञवल्क्य तथा अन्य महान् ज्ञानियों व ऋषियों ने सदाचार के नियम बता रखे हैं। चूँकि आपके पास शास्त्र विहित नियमों पर विचार करने का न तो समय है, न ही सामर्थ्य – इसलिए ज्ञानियों तथा संतों से नैतिकता की शिक्षा लेकर उसका अक्षरशः पालन करें।

सदाचार की सार्वभौमिकता

सभी धर्मों की अपनी-अपनी आचार-संहिताएँ रहती हैं। भगवान बुद्ध का अष्टमार्ग आचार-संहिता-सार का उदाहरण है। महर्षि पतंजलि के यम-नियम भी आचार-शास्त्र ही हैं। मनु-स्मृति, याज्ञवल्क्य-स्मृति और पाराशर-स्मृति आचार-नियमों के ही संग्रह हैं। गीता के तीन प्रकार के तप भी इन्हीं को स्पष्ट करते हैं।

नैतिकता के मूल सिद्धान्त सब धर्मों में समान ही हैं, क्योंकि सबका स्रोत ईश्वर है। सार्वभौमिकता तो नैतिकता का मूल है। इसके बिना नैतिकता जीवित नहीं रह सकती।

कोई ऐसा कार्य मत करो जो दूसरों के हित में न हो, या जिसे करने के बाद आपको पश्चात्ताप हो या झेंपना पड़े। केवल ऐसे कर्म करो जो सराहनीय हों और जिनमें दूसरों का तथा तुम्हारा हित हो। संक्षेप में सदाचार की व्याख्या यही है। सबको अनिष्ट से बचाने के लिए ही सूक्तियाँ रची गई हैं।

मनुष्य नैतिकता का जीवन-यापन क्यों करे? क्यों ऐसा करे और वैसा न करे? यह इसलिए कि इनके बिना मनुष्य का जीवन पाशविक जीवन बनकर रह जाएगा। पशुत्व को दिव्यत्व में बदलकर, मनुष्य की प्रगति ही नैतिकता का उद्देश्य है।

नैतिकता के प्रकार

मानव-नैतिकता, पारिवारिक-नैतिकता (कुल मर्यादा), सामाजिक-नैतिकता, राष्ट्रीय-नैतिकता और व्यावसायिक-नैतिकता, ये नैतिकता के विभिन्न आयाम हैं। डॉक्टर की अपनी व्यावसायिक नैतिकता रहती है, उसे अपने रोगियों के रहस्य दूसरों के समक्ष प्रकट नहीं करने चाहिए। रोगियों के प्रति दया और सहानुभूति की भावना रखना उसका धर्म होना चाहिए। सादे पानी से भरे इंजेक्शन लगा कर महँगी दवाइयों की कीमत कदापि वसूल नहीं करनी चाहिए। भले ही उसे पहली फीस अभी तक न मिली हो, फिर भी उसे रोगी के पास स्वयं जाना चाहिए। उसे निर्धन से तो कुछ भी नहीं लेना चाहिए।

एक वकील के भी अपने कुछ नैतिक नियम होते हैं। उसे झूठे गवाह नहीं बनाने चाहिए। मात्र फीस के लालच में झूठे मुकदमे नहीं लेने चाहिए। निर्धनों की सहायता बिना फीस लिए करनी चाहिए। व्यापारी के भी नैतिक नियम रहते हैं। उसे अनुचित लाभ की इच्छा नहीं रखनी चाहिए। उसे उदार हृदय से दान देना चाहिए। अपने व्यवसाय में उसे असत्य नहीं बोलना चाहिए।

आचार-शास्त्र एक सापेक्ष-सिद्धान्त

आचार-शास्त्र एक सापेक्ष विद्या है। धर्म तथा अधर्म सापेक्ष संज्ञाएँ हैं। इनकी ठीक-ठीक व्याख्या करना कठिन है। जो एक मनुष्य के हित में हो, आवश्यक नहीं कि वह दूसरे के भी हित में हो। जो आज शुभ माना जा रहा है, आवश्यक नहीं कि वह किन्हीं और परिस्थितियों में भी शुभ हो। आचार-शास्त्र का सम्बन्ध मानव तथा उसके चारों ओर व्याप्त वातावरण से रहता है।

नैतिकता के अर्थ बदलते रहते हैं। यह सापेक्ष सिद्धान्त है। वह कामी पुरुष जो अपनी विधिवत् विवाहित पत्नी को अपनी कामपूर्ति के लिए हर समय तंग करता है, उस व्यक्ति से निम्नतर है जो छः मास के पश्चात् वेश्या के यहाँ जाता है, और जो सदा व्यभिचार का ही चिन्तन करता रहता है, वह तो निकृष्टतम है। अब आपको इस सूक्ष्म अन्तर का ज्ञान हो गया होगा।

हिंसा किन्हीं विशेष परिस्थितियों में अहिंसा मानी गयी है। एक डाकू को, जो राहगीरों का घातक है, मार देना भी अहिंसा मानी जाती है। एक क्षत्रिय राजा के लिए अपने शत्रु की हत्या करना धर्म है, किन्तु एक संन्यासी अथवा ब्राह्मण के लिए अपने रक्षार्थ भी वह कार्य अधर्म हो जाता है। उसके लिए तो क्षमा तथा सहनशीलता का गुण अपनाना ही उचित है। किसी महात्मा अथवा गुरु के प्राणों की अन्याय से रक्षा के लिए असत्य बोलना भी धर्म है। इस विशेष परिस्थिति में असत्य भी सत्य का रूप ले लेता है। जिस सत्य से लोक में अहित हो, वह असत्य-तुल्य हो जाता है।

निवृत्ति-मार्ग को अपनाने वाले संन्यासी अथवा तपस्वी के लिए क्षमा ही शोभा देती है, किन्तु एक शासक के हित में ऐसी बात नहीं है। शासक उसे तो क्षमा कर सकता है जिसके द्वारा उस अकेले का अहित हुआ हो, किन्तु अन्य प्राणियों को कष्ट देने वालों को क्षमा कर देना शासक के लिए अनुचित है।

धर्मसंकट

कभी-कभी मनुष्य ऐसी परिस्थिति में पड़ जाता है कि वह निर्णय ही नहीं कर पाता कि क्या करे। कर्तव्य-पालन में विरोधाभास होता है, धर्मसंकट की अवस्था हो जाती है। 'दोनों अधर्मों में से किसे त्यागें?' यह प्रश्न सम्मुख आ खड़ा होता है। जिस अधर्म में पाप कम ही पड़े, उसे ही चुनना होगा और उस पाप-कर्म के लिए प्रायश्चित भी करना होगा।

किसी व्यक्ति के पिता मरणासन्न अवस्था में थे, उनके पास खाने के लिए कुछ भी नहीं था। पिता भूख के कारण मर रहे थे और भोजन की व्यवस्था केवल चोरी के माध्यम से संभव थी। ऐसे संकट के समय पुत्र का धर्म क्या बनता है? पिता के प्राण बचाना उसका धर्म है। उसने चोरी किये भोजन से पिता के प्राण तो बचा लिए, किन्तु चोरी का दण्ड भी तो भुगतना पड़ेगा।

भावना का महत्त्व

किसी भी कर्म में कर्त्ता की भावना क्या रहती है, इसे देखना होगा। धर्म-अधर्म का निर्णय तो कर्त्ता के आशय से होगा, न कि परिणाम से। ईश्वर तो मनुष्य के आशय को ही देखता है।

भगवान राम ने रावण से युद्ध किया। रावण भी युद्ध में रत हुआ। दोनों के कार्य बाह्य रूप में समान थे, पर उद्देश्यों में भारी अन्तर था। श्रीराम ने तो

लोक-रक्षार्थ व धर्म-संस्थापनार्थ दुष्ट रावण से युद्ध किया। उनमें कोई स्वार्थ-भावना न थी। किन्तु रावण दुराशय था। उसके मन में पाप था।

सांसारिक मनुष्य की अपेक्षा कर्मयोगी अधिक उत्साह से कार्य करता है। दोनों का कर्म तो एक-सा रहता है, किन्तु कर्म-उद्देश्य में अन्तर होता है। कर्मयोगी अपने परम लक्ष्य की ओर अग्रसर होता है, जबकि संसारी मनुष्य अपने आप को निकृष्ट भावनाओं के कारण बंधन में डाल लेता है।

मनुष्य के आन्तरिक भाव ही उसके कार्यों को निर्देशित करते हैं। यदि आन्तरिक भाव शुद्ध हैं, तो उसके सभी कर्म भी शुद्ध रहेंगे, जबकि इसके विपरीत हुआ तो दुःख और पापों का मुँह ही देखना पड़ेगा। कार्य-व्यापार करते समय आपके आन्तरिक भाव में अहंकार-शून्यता होनी चाहिए, तभी मन के भाव शुद्ध रह पायेंगे।

सद्गुणों का सतत् अभ्यास

सदाचार तभी स्थायी हो सकता है जब इसका अभ्यास निरंतर होता रहे। इस क्षेत्र में उन्नति तभी होगी जब सतत् अभ्यास होगा। जीवन के प्रत्येक व्यवहार में सावधान रहकर मन तथा इसके संकल्पों को आत्म-बलिदान के दृढ़ अभ्यास से वश में करते रहना होगा।

अपने आंतरिक तथा बाह्य व्यवहार में तथा मन, वचन और कर्मों में सत्य और शुद्धता का दृढ़तापूर्वक पालन करना होगा। दूसरों से प्रेम, सहिष्णुता तथा उदारता का व्यवहार करना होगा। प्रत्येक क्षेत्र में इन गुणों को दृढ़तापूर्वक अपनाना होगा।

सिद्धान्तों के लिए बलिदान करने से ही नैतिक जीवन का प्रारम्भ हो पाता है। सदाचारी मनुष्य के आदर्श धार्मिक होते हैं, जिनका वह सदैव अक्षरशः पालन करता है। अपनी त्रुटियों का निवारण करते हुए वह अपने आचरण को शुद्ध बनाता है और तब कहीं जाकर वह नैतिकता में पूर्णता प्राप्त कर पाता है।

भगवद्-साक्षात्कार – मानव का सर्वोत्तम कर्तव्य

पारिवारिक तथा सामाजिक कार्य गौण हैं। मानव का अंतिम लक्ष्य भगवद्-साक्षात्कार प्राप्त करना ही है। सभी कर्तव्यों का पालन वस्तुतः इसी सर्वोत्तम लक्ष्य प्राप्ति के लिए ही है।

आचार-शास्त्र का उद्देश्य आत्म-साक्षात्कार है। मानसिक शांति के लिए मन की कुत्सित भावनाओं को वशीभूत करना ही आचार-शास्त्र का उद्देश्य है। मानसिक शान्ति मन में विवेक का प्रकाश फैलाती है, जिससे मनुष्य आत्मा को शीघ्र जान पाता है।

कर्मों द्वारा ही दैवी गुणों में पूर्णता प्राप्त नहीं हो सकती। कर्मों द्वारा जो मानसिक शुद्धता आयेगी, उसकी सहायता से लक्ष्य पर निरंतर ध्यान करना होगा। आत्मा के परमात्मा में मिलने में नैतिकता और दैवी गुणों का सहयोग अनिवार्य है।

दैवी गुणों से ही परमानन्द-प्राप्ति संभव

जीवन को सदाचार द्वारा शक्ति मिलती है। आचारविहीन मानव लवणरहित भोजन के समान है। नैतिकता के बिना आदर, शिष्टता, नम्रता, सुशीलता आदि गुणों का समावेश संभव नहीं।

नैतिक व्यवहार ही आपको अपने कुटुम्बियों, पड़ोसियों, मित्रों, सहयोगियों तथा अन्य जनों के मध्य रहने में सहायक होगा। इसके द्वारा ही आपको प्रभु-कृपा से परम शांति तथा मुक्ति प्राप्त हो सकेगी। आपका हृदय शुद्ध हो जाएगा। आपकी आत्मा निर्मल हो जाएगी। दुःखियों के प्रति दया, करुणा तथा सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार ही सदाचार कहलाता है। सदाचार अत्यावश्यक है। किसी अन्य लोभ के लिए इस सदाचार का त्याग नहीं करना चाहिए। जीवन में कोई भी संकट आ पड़े, तो भी इस सत्पथ को नहीं त्यागना चाहिए।

सदाचार के नियमों का पालन आपको करना ही होगा। आपके हित तथा आपकी आध्यात्मिक उन्नति के लिए ही ये सब नियम बने हैं। धर्म-पथ अत्यन्त संकीर्ण है, परन्तु इसके सिद्धान्त गुरुत्वाकर्षण शक्ति की भांति सुनिश्चित होते हैं। इसका त्याग मत कीजिए। इसी से अमरत्व की प्राप्ति होगी।

निःसंदेह सदाचार के नियम-पालन में कठिनाई अवश्य आती है। तिरस्कार और भ्रम में डाल देने वाली अनेक धारणाएँ बाधाएँ खड़ी करेंगी। इनका सामना करना पड़ेगा। इसमें सहिष्णुता, नम्रता और क्षमा से बहुत सहायता मिलेगी। किसी भी अवस्था में सदाचार-पालन मत छोड़िये, भले ही कितने आक्षेप आप पर आ जाएँ। बुराई के बदले भलाई ही करते जाइये।

सदाचार से श्रेष्ठ अन्य कोई धर्म नहीं। सदाचार से शक्ति मिलती है। सदाचार ही परमानन्द की प्राप्ति कराता है। सदैव सदाचार को अपनाते रहिए। संदेह उपस्थित होने पर महात्माओं तथा शास्त्रों के अनुसार पथ-निर्धारित कीजिए। सदाचार-पथ पर आरूढ़ रहिए। चारित्रिक विकास कीजिए। अपने आदर्श पर सदैव दृढ़ रहिए। इसी का पालन करते रहिए, आपको शीघ्र ही परमानन्द और अमरत्व की प्राप्ति होगी।

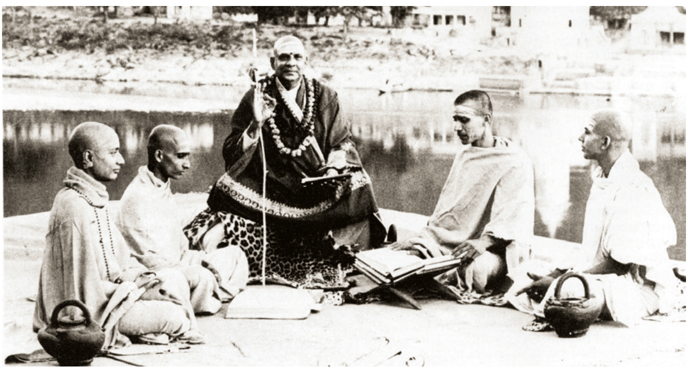

आत्मसुझाव की कला

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

सभी व्यक्तियों में किसी-न-किसी रूप में भय, कुण्ठाएँ और संवेगात्मक तनाव रहते हैं, भले ही वे चेतन-अचेतन रूप से उनके बारे में सजग न हों। ये सब चीजें मन को शान्त नहीं होने देतीं तथा ध्यान में बाधा पहुँचाया करती हैं। यह सूत्र वाक्य सदैव याद रखने योग्य है कि हम जैसा सोचते हैं, वैसा ही बनते हैं। यह वाक्य हमारे मानसिक अवरोधों को हटाने में मार्गदर्शक बनेगा। आत्मसुझाव में बहुत बड़ी शक्ति है। यदि हम जीवन में नकारात्मक दृष्टिकोण रखेंगे तो हमारा जीवन भी नकारात्मक तथा निराशावादी हो जायेगा। यदि हम जीवन में रचनात्मक दृष्टिकोण रखेंगे तो हमारा जीवन आशावादी बनेगा। यदि हमारे मन में तीव्रता से यह विचार आने लगे कि हमें कैंसर हो जाएगा, तो एक दिन हमें सचमुच में कैंसर रोग का कष्ट भोगना पड़ेगा। आत्मसुझाव में ऐसी प्रबल शक्ति है।

वास्तव में ये सारी चीजें सिर्फ मन से ही नहीं, बाहर से भी आती हैं। हमारा मन बाहरी घटनाओं से लगातर प्रभावित होता रहता है। ये प्रभाव हमारे ऊपर हमेशा पड़ा करते हैं। जब हम कोई पुस्तक पढ़ते हैं तो हम उससे सुझाव प्राप्त करते हैं और हमारा आचरण वैसा ही बनता है। हम किसी से बातें करते हैं तो भी सुझाव प्राप्त करते जाते हैं, चाहे हम इसके प्रति सजग हों या न हों। जो कुछ हमारे मन में आता है, सुझाव के रूप में ही आता है। लोगों की बातों, हाव-भावों से भी हमें सुझाव प्राप्त होते हैं। सुझाव की इस शक्ति को आत्मसुझाव के रूप में उपयोग में लाने से हम अपनी मानसिक तनाव की स्थिति को सरलतम रूप से दूर कर सकते हैं। साथ-ही मन पर पड़ने वाले नकारात्मक प्रभावों को भी हम दूर कर सकते हैं जो हमारे अन्दर अवरोध पैदा करते हैं।

ध्यानाभ्यास के पूर्व की तैयारी में भी आत्मसुझाव का उपयोग आवश्यक है। आत्मसुझाव प्रारम्भ करने से पूर्व अपने अंदर परिवर्तन की आवश्यकता का अनुभव करना होगा। बिना तीव्र इच्छा और आवश्यकता के इसके उद्देश्य की पूर्ति नहीं होगी। यदि किसी में आधे मन से ही परिवर्तन करने की इच्छा है तो वह बार-बार इस विषय का चिन्तन-मनन करके परिवर्तन करने की उत्कट इच्छा जगा सकता है।

आप इस बात को अच्छी तरह समझें कि आध्यात्मिक पथ पर अग्रसर होने के साथ ही अनेक मानसिक बाधायें उपस्थित हो जाती हैं। जितनी अधिक प्रगति इस पथ में होगी, उतनी ही अधिक बाधायें चेतना के क्षेत्र में उभर कर राह रोकेंगी। इसलिए जैसे ही वे दिखायी पड़ें, उनके प्रति निषेधात्मक रुख अपनाना होगा। विपरीत भावनाओं, जैसे क्रोध की जगह क्षमा, को उनके स्थान पर बैठाना होगा, आत्मसुझाव देना होगा कि वे उतनी महत्त्वपूर्ण नहीं हैं जितनी दिखायी पड़ती हैं।

चूँकि प्रत्येक व्यक्ति की समस्या अपने ढंग की होगी, इसलिए उसे अपने अनुकूल विधि की तलाश करनी होगी और बाधाओं से छुटकारा पाने के लिए अपने लिए विकसित की गई विधि का उपयोग करना होगा। उदाहरण के लिए, एक ऐसे व्यक्ति को लें जिसे अंधेरे से डर लगता है। चूँकि उसे अपना अधिकांश जीवन अंधकार में ही व्यतीत करना होगा, इसलिए मानसिक उपद्रव स्वाभाविक है। उसका मन जाने-अनजाने सदा तनावग्रस्त रहेगा। मन से इस भय के भूत को भगाने का उपाय यह है कि वह अनुभव करे कि यह भय कितना हास्यास्पद है। वह महसूस करे कि अंधकार मात्र प्रकाश का विपरीत रूप है। वह अपने अनुभव में लाये कि इस अंधकार से अन्य लोग भयभीत नहीं होते हैं। वह समझने का प्रयास करे कि जब इस अंधकार का अपना कोई अस्तित्व नहीं है, और अन्य लोग इसकी परवाह नहीं करते, तो मैं क्यों भयभीत हूँ। इस प्रकार मन को निरन्तर आत्म-सुझाव देते रहने से निश्चित रूप से उसके मन से भय का भूत बाहर निकल भागेगा। इस प्रकार के सुझाव तब बड़े शक्तिशाली प्रमाणित होते हैं जब मन पूरी तरह विश्रान्त हो। इस प्रकार के उपचार से दृढ़मूल भय भी जड़ से समाप्त हो सकता है, बशर्ते भयग्रस्त व्यक्ति उसके निर्मूलन के लिए पूरे मन से इस प्रयास में लग जाए। सतत् प्रयास का परिणाम यह होगा कि अंधकार के प्रति एक बिल्कुल नई और उदासीन वृत्ति उस व्यक्ति के मन में उत्पन्न होगी, जो उसके अर्ध-चेतन मन में प्रवेश कर अंधकार के भय को निकाल बाहर करेगी।

आत्म-सुझाव सभी प्रकार के भय, मनोग्रन्थियों और अन्तर्द्वन्द्वों में एक कारगर उपाय सिद्ध होगा। आवश्यकता इस बात की है कि हम समस्या से मुक्त होने की प्रबल इच्छा रखते हों। प्रश्न यह है कि कोई व्यक्ति कैसे गहराई में बैठी इन समस्याओं का पता करे, जो उसके जीवन पर कुप्रभाव डाल रही हैं, जो उसका सुख-चैन छीनकर उसे तनावग्रस्त बना रही हैं। उसे इन जटिल

समस्याओं की जानकारी तक नहीं है और अनजाने में ये उसके जीवन को खोखला बना रही हैं। अभ्यासी यह अनुभव करेगा कि योग और ध्यान के द्वारा ज्यों-ज्यों उसकी आत्म-सजगता बढ़ेगी, त्यों-त्यों उसकी समस्याएँ, भय, तनाव आदि सतह पर दृष्टिगोचर होने लग जाएँगे।

इन दृढ़मूल भावनात्मक और मानसिक तनावों को उभार कर सतह पर लाने के लिए ध्यान की एक विशेष विधि अन्तर्मौन है। अन्तर्मौन के नियमित अभ्यास के दौरान जो भी सकारात्मक या नकारात्मक अनुभव आए, उसे मन में या कागज पर नोट कर रखना चाहिए।

मानसिक और भावनात्मक समस्याओं को हटाने की चेष्टा में दूसरी आवश्यक बात यह है कि बाहरी घटनाओं और संकटों को मन से बाहर रोक रखने का अभ्यास करना चाहिये, क्योंकि ये मन पर विपरीत प्रभाव डालते हैं। दूसरे शब्दों में, हमारा मन इतना मजबूत होना चाहिए कि बाह्य घटनाओं

का प्रभाव ही हमारे ऊपर न पड़े। इसके लिये प्रत्येक व्यक्ति और वस्तु के प्रति धीरे-धीरे वैराग्य भाव पैदा करना होगा। इसका अर्थ यह नहीं कि हम शाक-सब्जी की तरह हो जाएँ, व्यक्तिगत सम्बन्धों से विलग होकर जीवन के उतार-चढ़ाव में भाग न लें। इसका तात्पर्य यह है कि सांसारिक व्यवहार तथा बाह्य क्रिया-कलापों में प्रेम, घृणा, आदि का प्रदर्शन करते समय आपके अंतर्मन को ये चीजें प्रभावित न कर सकें। संवेगात्मक भाव आपके व्यक्तित्व को अवश्य स्पर्श करें, लेकिन चेतना की गहराइयों में उनकी कोई छाप न पड़े।

यह सब मात्र अपनी समझ का ही खेल है। हम किसके साथ तादात्म्य स्थापित कर रहे हैं, इसी के प्रति सजग होना है। हम अपने को शरीर या मन समझेंगे तब सुख-दु:ख, इच्छा-अनिच्छा, प्रतिकूल और अनुकूल भावनाओं की लहरों से उद्वेलित होंगे ही। इसके विपरीत अगर हम मन-शरीर से तादात्म्य स्थापित न करके चेतना के केन्द्र से जुड़ेंगे तो मानसिक-शारीरिक व्याधियाँ हमें कम ही छू पायेंगी, अर्थात् सुख-दु:ख का थोड़ा ही असर होगा। हम संसार की बाह्य उत्तेजनाओं की तुलना तालाब में उठने उाली जल की तरंगों से कर सकते हैं। लहरें जल की ऊपरी सतह को ही प्रभावित या उद्वेलित करती हैं, आन्तरिक तल को नहीं। हमें भी बाह्य प्रभावों से ऐसा ही हल्का सम्बन्ध रखना चाहिये। आध्यात्मिक साधक की अंतरात्मा की शांति को मन या शरीर के नकारात्मक स्पंदनों एवं बीमारियों से किंचित् भी प्रभावित नहीं होना चाहिए। ऐसा कहना आसान है, करना कठिन, परन्तु स्वयं के प्रति सजग होने के अनवरत अभ्यास से इस स्थिति की प्राप्ति हो सकती है, जिसमें व्यक्ति संसार की विक्षुब्धकारी एवं कोलाहलपूर्ण घटनाओं के बीच शान्त एवं अप्रभावित रह सकता है।

आत्मसुझाव का दूसरा महत्त्वपूर्ण उपयोग है, शारीरिक रोगों की चिकित्सा और रोकथाम। बहुत तरह के असाध्य रोगों जैसे कैंसर, ल्यूकीमिया आदि से ग्रस्त व्यक्ति भी अपनी दृढ़ इच्छाशक्ति और संकल्प शक्ति के बल पर स्वस्थ होते देखे गये हैं। ध्यान के अभ्यास के बाद का समय आत्मसुझाव के लिए सबसे उत्तम है। प्रात:काल सोकर उठने के बाद या रात में सोने के पूर्व का समय भी उपयुक्त है। ऐसे समय हमारा मस्तिष्क सुझावों के प्रति ग्रहणशील रहता है। ऐसे अवसरों पर दृढ़-संकल्प और विश्वास के साथ कुछ मिनटों तक आत्मसुझावों को दुहराया जाए। उस समय हमेशा विश्वास रखें कि इच्छित परिवर्तन होगा ही और अपने अभीष्ट की प्राप्ति अवश्य होगी, क्योंकि आधे मन से दिये हुए आत्मसुझावों की सफलता में सन्देह है।

एक बेहतर सभ्यता की ओर

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

अध्यात्म शब्द दो शब्दों से बना है – अधि और आत्म, जिसका अर्थ है 'अपनी आत्मा के करीब आना'। आत्मा की प्रकृति क्या है? प्रकाश और सामंजस्य से परिपूर्ण। आत्मा में संतुलन, ज्ञान, सजगता, सकारात्मकता, पवित्रता और शांति व्याप्त रहती है। इसलिए वह प्रक्रिया जो आपको अपनी सहज प्रकृति के इन पहलुओं के करीब ले जाती है, अध्यात्म के नाम से जानी जाती है।

दूसरा पहलू संस्कार है, जिसे मैं एक स्थिति के रूप में परिभाषित करता हूँ। संस्कार ऐसी स्थितियाँ हैं जो मानव व्यक्तित्व के प्रगतिशील और सकारात्मक विकास के लिए अनुकूल हैं। तीसरा पहलू है साधना। परिवर्तन की प्राप्ति के लिए आप जो प्रयास करते हैं, वह साधना है। इस प्रकार, आत्म-प्रयास के माध्यम से ऐसी परिस्थितियाँ निर्मित की जानी चाहिए जो आपको बेहतर, आध्यात्मिक सजगता की ओर ले जा सकें।

चार 'स-कार'

संस्कार व्यक्ति और संसार से जुड़े रहते हैं। संस्कृत में व्यक्ति और संसार की अन्तर्सम्बन्धित प्रकृति को दर्शाने वाले शब्द प्राय: 'स-कार' से शुरू होते हैं, जैसे संस्कार, सदाचार, सद्वृत्ति, समाज, सभ्यता और संस्कृति। संस्कारों की विशालता और उपयोगिता को जानने के लिए इनमें से चार घटकों को जानना आवश्यक है।

पहला है सभ्यता। सभ्यता को कैसे समझा जा सकता है? जब वैज्ञानिक पुरानी सभ्यताओं का अध्ययन करते हैं तो वे उनकी जीवन शैली को देखते हैं, उनकी तकनीकी उन्नति को देखते हैं, शिकार करने, खाना पकाने या जीवन को बेहतर बनाने के लिए उनके द्वारा इस्तेमाल किए जाने वाले औज़ारों को देखते हैं। वे उनके वस्त्रों, खान-पान की आदतों, घरों की बनावट, जल निकासी और सफाई व्यवस्था को देखते हैं। इन पहलुओं को देखकर वे कहते हैं, 'यह सभ्यता तकनीकी रूप से उन्नत थी या पिछड़ी हुई थी।' सभ्यता की पूरी अवधारणा इस बात पर निर्भर करती है कि हमारे आस-पास क्या

है – हम कैसे रहते हैं, कैसे खाते हैं, किन औज़ारों का इस्तेमाल करते हैं, कैसे अपने समाज, अपने घर-परिवार, अपनी प्रतिभाओं और कौशलों को विकसित करने के लिए बुद्धि का इस्तेमाल करते हैं। ये सभी किसी सभ्यता को समझने के अंग हैं।

अगला घटक है संस्कृति। संस्कृति आपकी अभिव्यक्ति है – आप दुनिया को कैसे देखते हैं, लोगों से कैसे व्यवहार करते हैं, लोगों को कैसे देखते हैं। एक उदाहरण – एक नवयुवक बस में यात्रा कर रहा है, अपनी सीट पर आराम से बैठा है। एक बुजुर्ग महिला बस में आती है। क्या वह उन्हें अपनी सीट देने के लिए उठता है या खुद बैठे रहता है और उन्हें खड़े रहने देता है? यह व्यक्तिगत प्रतिक्रिया मनुष्य की संस्कृति को परिभाषित करती है। यदि वह सीट से नहीं उठता है तो वह सुसंस्कृत नहीं है। यदि वह उठकर उन्हें सीट दे देता है, तो वह दूसरे जरूरतमंद इंसान के लिए सम्मान, सहानुभूति और देखभाल की भावना व्यक्त कर रहा है। यही संस्कृति है।

कोई गिर जाए और उसे उठाने के लिए आप आगे बढ़ जाते हैं, यह संस्कृति है। कोई गिर जाए और आप उसकी हँसी उड़ाकर चलते रहते हैं तो यह संस्कृति नहीं है। संस्कृति आपके जीवन की सकारात्मक और रचनात्मक अभिव्यक्ति है, और यह ऐसी चीज है जो सिखायी और आत्मसात् की जाती है। अपने घर पर भी आप बच्चों से कहते हैं, 'यह चॉकलेट लो और सबके साथ बाँटो। लालच मत करो, अपने भाई-बहन को भी दो।' आप अपने बच्चों से कहते हैं, 'अच्छा करने की कोशिश करो। अगर तुम्हें सड़क पर कोई अंधा व्यक्ति दिखे तो उसे सड़क पार कराने में मदद कर दो।' आप उनसे कहते हैं, 'झूठ मत बोलो। हमेशा सच बोलो।' इस तरह, बच्चों के स्वभाव, व्यक्तित्व, सोच, व्यवहार और कर्म को बेहतर बनाने के लिए माता-पिता उन्हें जो कुछ भी बताते हैं, वह संस्कृति की शिक्षा है। उन निर्देशों का पालन किया जाता है या नहीं, यह दूसरी बात है। फिर भी, हमारे बड़े-बुजुर्ग हमें बताते हैं कि कैसे सही तरीके से व्यवहार करना है, कैसे एक सकारात्मक और समुचित संस्कृति विकसित करनी है जिसमें सभी के लिए सम्मान, आदर, सहयोग और प्रेम हो। इस प्रकार सभ्यता आपके चारों ओर है और संस्कृति आपके अंदर है।

तीसरा 'स-कार' है संस्कार। यह एक व्यापक और गहन अवधारणा है, क्योंकि इसके दायरे में जीवन की संपूर्ण अभिव्यक्ति आती है। हालाँकि आजकल संस्कार शब्द प्राय: धार्मिक संस्कारों को ही इंगित करता है। भारत

के स्मृति शास्त्रों में एक विशेष पुस्तक है, गौतम स्मृति। इसमें चालीस संस्कारों की चर्चा की गई है जो व्यक्ति को जीवन में आगे बढ़ने में मदद करते हैं और उसे ज्ञानवान्, रचनात्मक, कर्मठ, प्रसन्न और संतुष्ट व्यक्ति बनाते हैं। कहा जाता है, *'जन्मना जायते शूद्रः, संस्कारात् भवेत् द्विजः'* अर्थात् जब कोई जन्म लेता है तो वह कुछ भी नहीं जानता, वह पूरी तरह से अज्ञानी और असभ्य होता है; संस्कारों के माध्यम से वह ज्ञान में पुनर्जन्म लेता है और संस्कृति प्राप्त करता है।

संस्कारों का वर्गीकरण

संस्कारों को विभिन्न परंपराओं में अलग-अलग तरीकों से परिभाषित किया गया है। यौगिक परंपराएँ संस्कारों को छह श्रेणियों में परिभाषित करती हैं। पहला वर्ग है अतीन्द्रिय संस्कार, जो व्यक्ति को अनुवांशिक तरीके से प्राप्त होते हैं और बड़े होने पर उसके चरित्र को परिभाषित करते हैं।

दूसरे प्रकार का संस्कार है इंद्रियगत संस्कार, जो व्यक्ति को इंद्रियों, समाज और दुनिया से प्राप्त होता है। उदाहरण के लिए, धूम्रपान एक इंद्रियगत संस्कार है। आप कॉलेज जाते हैं, एक दोस्त आपके पास सिगरेट लेकर आता है और कहता है, 'एक कश ले लो।' आप कहते हैं, 'अरे नहीं, मैंने अपने जीवन में कभी कश नहीं लिया है।' वह कहता है, 'नहीं, तुम्हें एक कश तो लेना

चाहिए। तुम मेरे दोस्त हो, तुम मुझे कैसे मना कर सकते हो?' आप कश लेते हैं, समय के साथ यह एक आदत बन जाती है और आप इसके बिना नहीं रह सकते। यह एक संस्कार बन जाता है जो इन्द्रियगत है। आप इन संस्कारों को अपनी इन्द्रियों के माध्यम से माता-पिता, मित्रों और समाज से प्राप्त करते हैं।

संस्कारों का तीसरा समूह भावगम्य संस्कार है, जिसे आप ईश्वर, गुरु अथवा किसी आध्यात्मिक शिक्षा या परंपरा के साथ भावनात्मक जुड़ाव के कारण विकसित करते हैं। भावगम्य संस्कार ही आध्यात्मिक जीवन के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण हैं। वे एक सरल सिद्धांत पर आधारित हैं जिसे स्वामी शिवानंद जी ने अपनी हर किताब और शिक्षा में प्रचारित किया है – प्रतिपक्ष भावना, जिसका प्रयोजन नकारात्मक को सकारात्मक में बदलना है। जब भी आप किसी नकारात्मक स्थिति का सामना करते हैं, चाहे वह बाहरी हो अथवा आंतरिक, मानसिक, भावनात्मक, आध्यात्मिक या अन्य कुछ भी, उसे सकारात्मक और उत्थानकारी स्थिति में बदल दें। जो भी नकारात्मकता या बुराई आप अपने सामने देखते हैं, उसे तुरंत सकारात्मक बना दें। यही प्रतिपक्ष भावना है और यही भावगम्य संस्कारों की शुरुआत भी है।

विषयोपयोगी संस्कार चौथा वर्ग है, जो किसी वस्तु के प्रति पसंद या आसक्ति के कारण बनता है। फिर यह आपके जीवन का इतना अभिन्न अंग बन जाता है कि आप उससे अपने लगाव को खत्म नहीं कर सकते। मोबाइल फोन का ही उदाहरण ले लें। शायद आप जैसे बुज़ुर्ग लोगों को यह समस्या न हो, लेकिन आज के बच्चों के लिए निश्चित रूप से यह एक समस्या है। वे गर्भ के समय से ही मोबाइल फोन का इस्तेमाल कर रहे हैं! उन्हें 3G या 4G बच्चों के रूप में जाना जाता है, जो जन्म से ही फेसबुक और इंस्टाग्राम जैसे सोशल मीडिया का इस्तेमाल करना शुरू कर देते हैं; जो जन्म लेते ही फोन में अलग-अलग गेम खेलकर अपनी एक नयी काल्पनिक दुनिया बनाना शुरू कर देते हैं; जो अपना सिर उठाकर दूसरे व्यक्ति की आँखों में आँख डालने और बातचीत करने में असमर्थ होते हैं। यह एक संस्कार है, एक आदत, स्वभाव और व्यवहार है जो व्यक्ति के पूरे जीवन को प्रभावित करता है।

सोलह सामाजिक संस्कार

शास्त्रों में सामाजिक अनुष्ठानों से संबंधित जो संस्कार परिभाषित किए गए हैं, वे मुख्य रूप से सोलह हैं। इन्हें षोडश संस्कार भी कहा जाता है, जिनका

भारतीय लोग यथासंभव पालन करने का प्रयास करते हैं। ऐसे बहुत कम लोग हैं जो सभी का पालन कर पाते हैं, लेकिन अधिकांश लोग तीन या चार का पालन तो कर ही लेते हैं।

सोलह संस्कारों में से तीन संस्कार जन्म से पहले ही हो जाते हैं। ये हैं गर्भाधान, पुंसवन और सीमन्तोन्नयन, जिनका उद्देश्य गर्भ में एक शुद्ध आत्मा का आह्वान करना है। फिर जन्म के बाद ब्रह्मचर्य आश्रम के विद्यार्थी जीवन में आगे बढ़ने के लिए संस्कार होते हैं, ताकि व्यक्ति तीक्ष्ण बुद्धि, मानसिक स्पष्टता, विवेक शक्ति और अर्जित ज्ञान के अनुसार जीवन जीने की क्षमता प्राप्त कर सके। ये संस्कार बीस-पच्चीस वर्ष की आयु तक दिए जाते हैं। विवाह संस्कार और अंत्येष्टि संस्कार कुछ अन्य सामान्य संस्कार हैं। ये सभी सोलह संस्कार व्यक्ति के भौतिक और सामाजिक जीवन से जुड़े होते हैं।

मनोविज्ञान में संस्कार

मनोविज्ञान संस्कार को मानव स्वभाव के अभिव्यक्त व्यवहार के रूप में परिभाषित करता है। संस्कारों का पहला समूह 'इदम्' द्वारा निर्देशित होता है। ये आम तौर पर हानिकारक और प्रतिबंधात्मक प्रकृति के होते हैं। पाशविक प्रवृत्ति, विनाशकारी व्यवहार तथा विक्षिप्त सजगता वाले लोग इस श्रेणी में

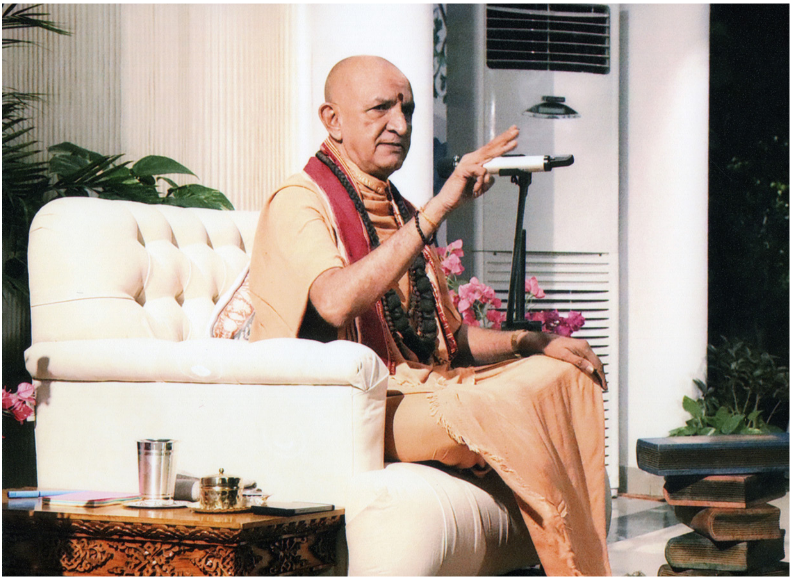

आते हैं। जो लोग तामसिक एवं विक्षिप्त होते हैं, तथा दूसरों के बारे में बुरा सोचने और उन्हें नुकसान पहुँचाने के तरीके तलाशते हैं, उनके व्यवहार, स्वभाव और चरित्र को इदम् संस्कार द्वारा परिभाषित किया जाता है।

मनोविज्ञान द्वारा परिभाषित अगली श्रेणी आत्म-संस्कार है। यह सकारात्मक संस्कार है जिसमें आप अपने जीवन के सकारात्मक गुणों को विकसित और अभिव्यक्त करते हैं। हानिकारक और विनाशकारी इदम् संस्कारों से आप ऐसे संस्कार विकसित करते हैं जो उत्थानकारी और सकारात्मक हैं।

तीसरा वर्ग है 'पर-अहं' या 'पर-आत्मा' जो पारलौकिक और नियत संस्कारों का क्षेत्र है। ये संस्कार हमेशा आपसे भला करवाते हैं, आपको संत बनाते हैं। इस प्रकार संस्कारों की एक विशाल शृंखला है और संस्कारों को मात्र 'मानसिक प्रभाव' कह देना इस शब्द के साथ न्याय नहीं करता।

संस्कार का प्रयोजन

संस्कार का प्रत्येक स्तर एक अलग आवश्यकता को पूरा करता है। वे स्वयं को बेहतर बनाने और अपने विनाशकारी व्यवहार को सृजनात्मक स्वभाव में बदलने की स्थितियाँ हैं ताकि जीवन की अच्छाई व्यक्त हो सके। जब मानव स्वभाव के सकारात्मक आयाम सक्रिय होते हैं तो स्थिति से आचरण की ओर स्वाभाविक परिवर्तन होता है। आपका आचरण, आपकी सजगता बदल जाती है। आपके आचरण के परिवर्तन के साथ ही चित्तवृत्तियाँ भी बदल जाती हैं। वे बेहतर और सकारात्मक हो जाती हैं। चित्तवृत्तियों के परिवर्तन के साथ संस्कृति भी बदल जाती है, आप हर चीज को सही तरीके से समझने लगते हैं। आपकी समझ भले ही पूर्ण न हो, लेकिन सही जरूर हो जाती है। जब सही समझ आती है तो यह सभ्यता के उत्थान में मदद करती है। यह एक चक्र है – सभ्यता-संस्कृति-स्थिति-सदाचार और फिर वापस सभ्यता की ओर। संक्षेप में, यह 'संस्कार' शब्द की व्यापक समझ है।

संस्कारों का उद्देश्य और प्रयोजन सकारात्मक रचनात्मकता को सामने लाना है। सकारात्मक रचनात्मकता के उभरने के साथ ही आपके कर्म भी सकारात्मक और रचनात्मक हो जाते हैं। अच्छे संस्कार के कारण होने वाला परिवर्तन हमेशा उत्थानकारी और सकारात्मक होता है, और यही संस्कारों को विकसित करने का मूल प्रयोजन है।

संस्कार और यम

अच्छे संस्कारों को विकसित करने की प्रक्रिया में आपको एक सूत्र चुनना होगा और उसे पकड़कर उसका अनुसरण करना होगा। योग ने भावगम्य संस्कारों के उन सूत्रों को यम के रूप में परिभाषित किया है। नियमों के रूप में भी नहीं, बल्कि यम के रूप में। सबसे पहले आपको यम को समझना होगा, तभी वे आपकी दिनचर्या का हिस्सा बनकर एक स्वाभाविक नियम बन सकते हैं। महर्षि पतंजलि ने पाँच यम और पाँच नियम परिभाषित किए हैं, लेकिन वे राजयोग से संबंधित हैं, योगिक जीवनशैली से नहीं। हठयोग ने भी सप्त भूमिकाओं के रूप में यम-नियमों को परिभाषित किया है, लेकिन वे हठयोग के अनुभव को गहरा करने से संबंधित हैं, योगिक जीवनशैली से नहीं।

योगिक जीवनशैली से जुड़े यमों का एक विशेष समूह है। पहला यम है मनःप्रसाद। प्रसाद शब्द प्रसन्नता का द्योतक है, लेकिन यहाँ एक और शब्द जोड़ा गया है – मनस्। इसलिए पहला यम है मन को प्रसन्न रखना। यहाँ चित्तप्रसाद, बुद्धिप्रसाद या अहंप्रसाद नहीं कहा गया, यह मनःप्रसाद है – मन को खुश रखना।

प्रसन्नता को जीवन की स्वाभाविक स्थिति बनना चाहिए। अगर आप प्रसन्नता को जीवन की परिस्थिति बना सकते हैं तो यह एक संस्कार होगा। अन्यथा प्रसन्नता केवल एक वांछित विचार है – 'मैं प्रसन्न नहीं हूँ, लेकिन मैं प्रसन्नता चाहता हूँ।' यदि खुशी की स्थिति नहीं है तो यह केवल एक वांछित विचार है – 'मैं खुश रहना चाहता हूँ।' लेकिन अगर आप अपने मन में खुशी की स्थिति बना लेते हैं तो आप हमेशा खुश रहते हैं। यह मन ही है जो आशाओं, अभिलाषाओं और आसक्तियों के साथ अपने जुड़ाव के कारण सुख या दुःख का अनुभव करता है, न कि बुद्धि या चित्त। जब आशाएँ और आसक्तियाँ पूरी होती हैं तो आप खुश होते हैं, नहीं तो आप दुःखी हो जाते हैं।

मन की सामान्य प्रसन्नता राग और द्वेष पर निर्भर है। '*सुखानुशयी रागः, दुःखानुशयी द्वेषः*' यह योगसूत्रों का कथन है। जब आप किसी सुखद, मनचाही वस्तु की ओर आकर्षित होते हैं तो राग होता है। जब आप किसी अप्रिय, अनचाही वस्तु से विमुख होते हैं, तब मन का उस वस्तु के प्रति द्वेष होता है। इस प्रकार जब आसक्ति अपने पूरे उत्कर्ष पर होती है तब आप सुखी होते हैं। जब अलगाव और द्वेष के संकेत मिलते हैं, तब आप दुःखी हो जाते हैं। राग केवल आत्म-संतुष्टि के लिए होता है, और कुछ नहीं। द्वेष आत्म-संतुष्टि के

अभाव को दर्शाता है, इसलिए आप बेचैन महसूस करते हैं, 'मैं संतुष्ट नहीं हूँ, मैं परेशान हूँ, मैं असंतुलित हूँ।' ये राग और द्वेष ही हैं जो मन की स्थिति को बदलते हैं।

इसलिए, यौगिक जीवनशैली से संबंधित पहला यम एकदम सरल है – प्रसन्नता का संस्कार बनाइये, यह आपका पहला प्रयास होना चाहिए। उस खुशनुमा संस्कार में सिर्फ एक मजबूरी भरी मुस्कान नहीं होती जिसे आप खुद को दूसरों के सामने खुश जाहिर करने के लिए जबरदस्ती चेहरे पर ले आते हैं, बल्कि आपका पूरा स्वभाव प्रसन्न हो जाता है। आप आंतरिक रूप से उन्मुक्त और उत्साहित हैं, आप वर्तमान में जीने का आनंद अनुभव कर रहे हैं और उसे अभिव्यक्त कर रहे हैं। जब आप जीवन के हर क्षण को जी रहे होते हैं, तब खुशी आती है, और यही आपके आध्यात्मिक विकास के लिए सही परिस्थिति का निर्माण करने की शुरुआत है। इसी समय आप अपनी शुद्धता, आनंद, सद्भाव, संतुलन और शांति के करीब आते हैं।

इस प्रकार योग के जीवनशैली पक्ष से संबंधित अनेक अलग-अलग यम-नियम हैं, जो जीवन में अधिक आशावादी, सकारात्मक, संतुलित, सामंजस्यपूर्ण, विकसित और सजग संस्कारों के उद्भव का आधार बनते हैं।

– 21 जनवरी 2018, गंगा दर्शन

सदाचार का रहस्य

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

एक बार की बात है, फारस देश में दारा नाम का गड़ेरिया रहता था। वह स्वभाव से बहुत ही नेक और ईमानदार व्यक्ति था। यूँ तो वह एक नीची जात में पैदा हुआ था, पर उसमें उच्चे कोटि का विवेक था। उसके पास व्यक्तियों को जानने-समझने की अद्भुत क्षमता थी।

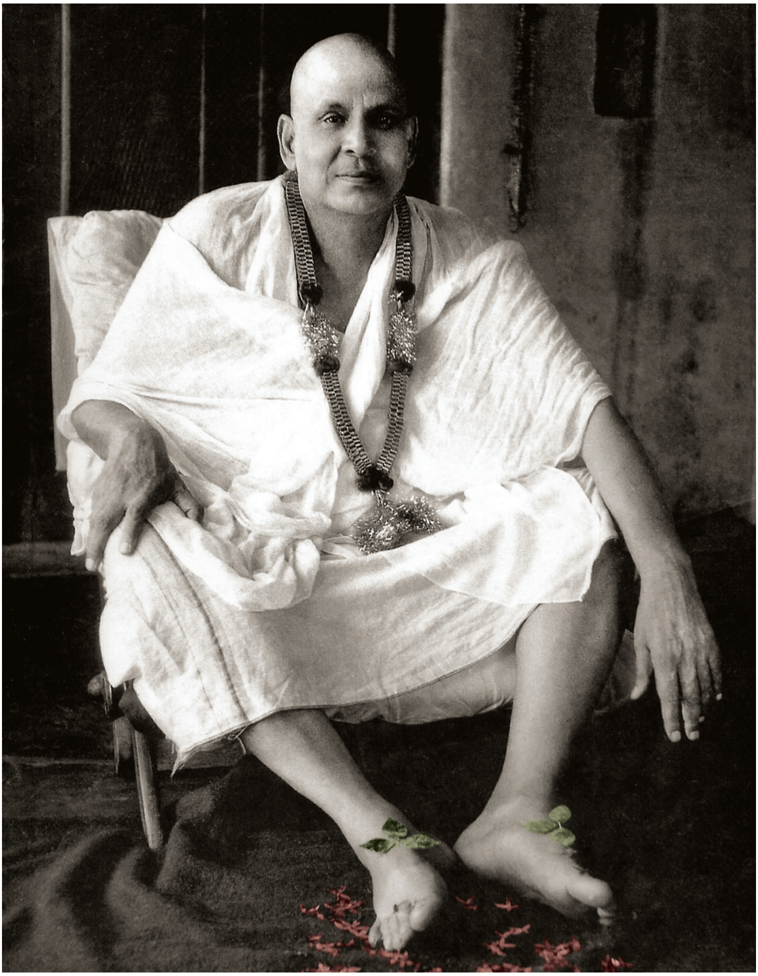

फारस देश के शाह ने उसके इन अद्भुत गुणों के बारे में जब सुना तो उसे अपने यहाँ नौकरी पर रख लिया। समय के साथ दारा शाह के दरबार में ऊँचे स्थान पर पहुँच गया और आखिरकार राज्य का प्रधान मंत्री बन गया। उसकी इस पदोन्नति के कारण राज-दरबार के अन्य मंत्री और दरबारी मन-ही-मन उससे जलने लगे, वे हमेशा अब इस फिराक में रहते कि किस तरह दारा को नीचा दिखाया जाए और उसकी अवनति हो सके।

शाह को दारा पर पूरा विश्वास था। एक बार शाह ने दारा को अपने राज्य के एक मुख्य प्रान्त का प्रतिनिधि बनाकर भेज दिया। उसकी अनुपस्थिति में अन्य मंत्रियों ने शाह के कान भरने शुरू कर दिए, वे मनगढ़ंत बातें बनाकर हर रोज शाह को दारा के खिलाफ भड़काते रहते। उन्होंने शाह को बतलाया कि दारा अपने भ्रष्टाचार से बहुत सारा धन इकट्ठा कर चुका है, और उसने उस धन को अपने पास एक सन्दूक में जमा करके रखा हुआ है। वह जहाँ भी जाता है, उस सन्दूक को अपने साथ जरूर लेकर जाता है। रात में उस सन्दूक को अपने पास रखे बिना वह सोता तक नहीं है। हो-न-हो उसने उस सन्दूक में कोई अमूल्य निधि छुपाकर रखी है, वरना इतनी सावधानी और सुरक्षा क्यों है?

इस प्रकार के विवरण को सुनकर शाह को भी शक हो गया, और उसने मामले की जाँच करने की सोची। वैसे तो उसे दारा पर पूरा विश्वास था, पर इतने सारे लोगों द्वारा कान भरे जाने पर वह अपनी शंका मिटा लेना चाहता था।

एक दिन वह अचानक रात के समय दारा के पास पहुँच गया। दारा एक यात्रा पर था और रात्रि विश्राम के लिए अपने तम्बू में जा चुका था। पास ही उसका वह सन्दूक पड़ा था जिसके बारे में शाह को बतलाया गया था। अन्य मंत्री भी शाह के साथ आए थे, वे दारा को रंगे हाथों पकड़े जाने के दृश्य से वंचित नहीं रहना चाहते थे। तम्बू में आने के बाद शाह दारा से बोला, 'दारा, मेरे प्यारे दोस्त! कृपया मुझे इस सन्दूक को खोलकर दिखाओ। मैं देखना चाहता हूँ कि आखिर इसमें क्या रखा है।' न चाहते हुए भी दारा ने शाह के आदेश का पालन किया और धीरे से अपने सन्दूक पर लगे ताले को खोला। सभी लोग साँस रोके उस सन्दूक में छुपे रहस्य को उजागर होता देखना चाह रहे थे।

जब वह सन्दूक खुला तो उनके चेहरों के रंग उड़ गए! सोचा था क्या और निकला क्या! उस सन्दूक में अनमोल हीरे-जवाहरात के बजाय एक पुराना, गंदा-सा, लगभग तार-तार हुआ गड़ेरिये का लिबास पड़ा हुआ था। इसके अलावा उसमें कुछ भी नहीं था, न हीरे-मोती, न सोना-चाँदी, कुछ भी नहीं।

शाह भी आश्चर्यचकित हो गया और उसने दारा की ओर प्रश्नभरी दृष्टि डाली। दारा ने बोलना शुरू किया, 'बादशाह सलामत! अब आपको पता चल ही गया वह रहस्य जिसे इतने वर्षों से मैंने छुपाकर रखा था। ये वही कपड़े हैं जिन्हें मैं आपकी कृपा होने से पहले पहना करता था। पर आप तो जानते ही हैं – धन, दौलत, पदवी और सत्ता, ये सब एक सामान्य व्यक्ति के लिए खतरनाक चीजें हैं। वे उसे बहुत ऊँचा दर्जा दिला सकती हैं, पर उसे धूल में मिला देने में भी सक्षम हैं। धन-दौलत, इज्जत-शोहरत, ये सब इंसान के सर पर सवार होकर उसे सही रास्ते से भटका सकते हैं। इन सब प्रलोभनों से वही बच सकता है जो हमेशा अपनी असलियत को याद रखे, यह याद रखे कि किस्मत खुलने से पहले वह क्या था। यह याद ही उसे सदा सही रास्ते पर चलने के लिए प्रेरित करती रहेगी, उसे विनम्र, सच्चा और सादा बनाए रखने में सहायता करेगी।'

'इसीलिए मैं इस पोशाक को हमेशा अपने साथ रखता हूँ। यह मुझे अपनी पिछली जिन्दगी की याद दिलाती रहती है। मैं हर रात इसे जरूर देखता हूँ ताकि पद-प्रतिष्ठा और सत्ता की ताकत के नशे में चूर न हो जाऊँ, मेरे पैर जमीन पर ही जमे रहें। यह मुझे विनम्र और सरल बने रहने में मदद करती है। जहाँपनाह, बाहर से भले ही मैं आपकी कृपा से आपके राज्य का राज्यपाल हूँ, पर असलियत में तो आज भी मैं वही गड़ेरिया हूँ जो बरसों पहले आप की शरण में आया था – सीधा-सादा, सच्चा, गरीब और ईमानदार। ईश्वर से हर दिन मेरी यही प्रार्थना रहती है कि मैं सदैव ऐसा ही बना रहूँ।'

प्रिय साधकों! दारा की इस कथा से सीख लीजिये। कभी यह मत भूलिये कि आपके हृदय के अन्दर क्या है, आपका वास्तविक रूप क्या है। बाहरी चमक-दमक आपके मन-मस्तिष्क को भ्रमित कर सकती है और आपको अधर्म के रास्ते पर ला खड़ा कर सकती है। जीवन में मिली शिक्षाओं को हमेशा याद रखिये और आस-पास होने वाली घटनाओं को साक्षी भाव से ही देखते रहिए। जिस प्रकार दारा अपनी असलियत को नहीं भूला, हमेशा उसने यह याद रखा कि उसकी वास्तविकता गड़ेरिया होना ही है, उसी प्रकार आप यह याद रखिये कि आपकी वास्तविकता परम-आत्मन् ही है। आप उस परमात्मा का ही अंश हैं। प्रभु का आशीष आपको प्राप्त हो, आपका आध्यात्मिक मार्ग प्रशस्त हो, यही मेरी हार्दिक कामना है।

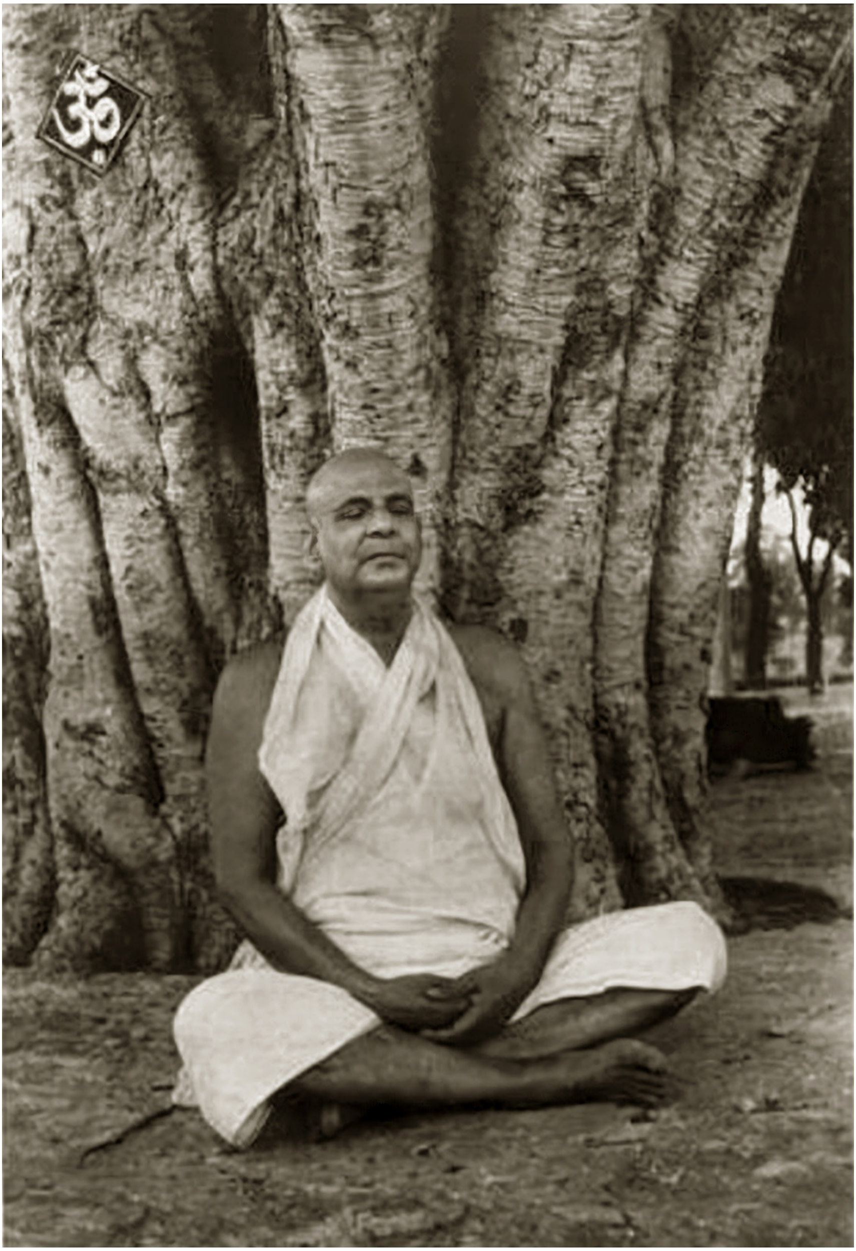

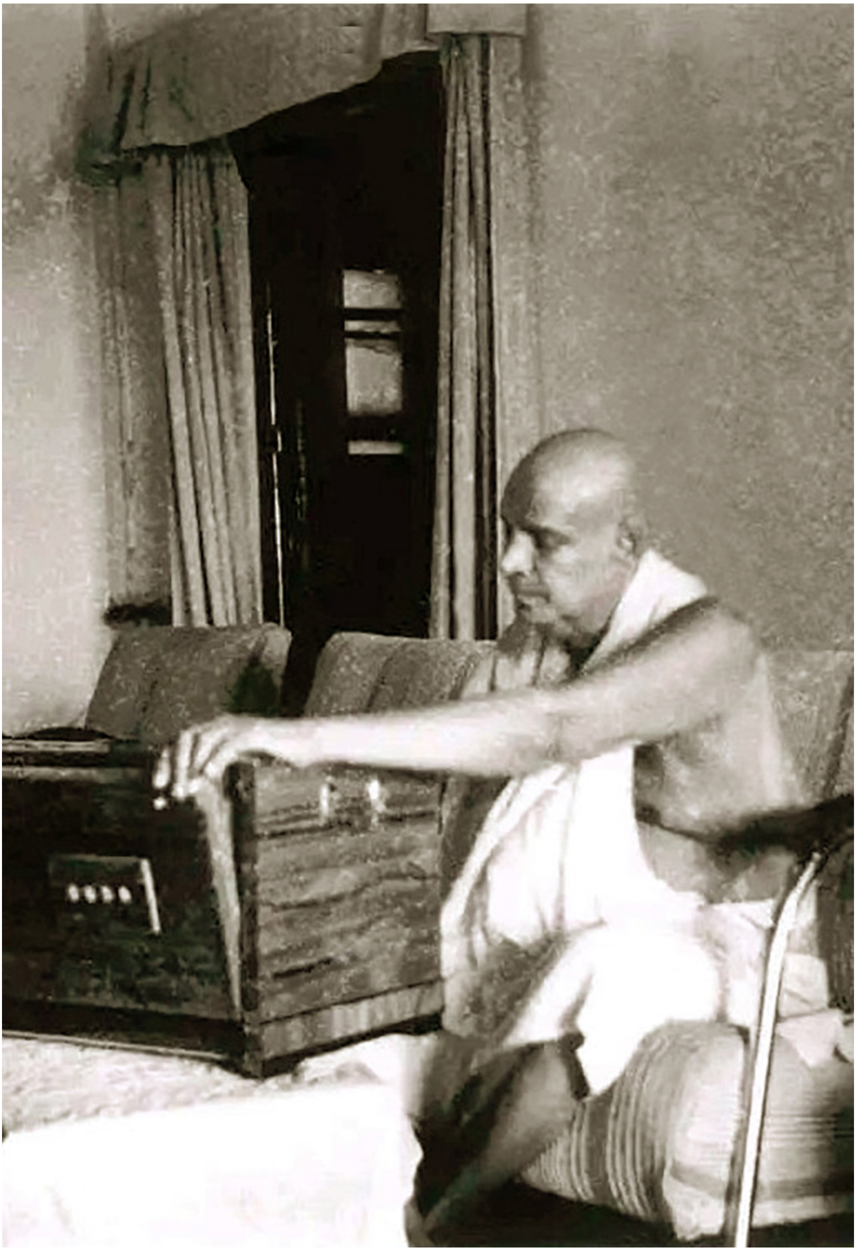

मन को सकारात्मक रखना

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

मनुष्य की सबसे बड़ी समस्या उसका मन है। शरीर उसकी समस्या नहीं है। शरीर में जितनी बीमारियाँ होती हैं, चाहे रक्तचाप हो, पेचिश हो, सर्दी-खाँसी या बुखार हो, अस्सी प्रतिशत बीमारियों में मन का योगदान निश्चित रहता है। कुछ बीमारियों में तो सौ प्रतिशत रहता है। किसी का मन ऐसा है तो किसी का वैसा, पर यह समझ लो कि सबके साथ ऐसा ही होता है। तुम सिर्फ अपने ही बारे में सोचते-समझते हो, मगर यदि दूसरे से पूछोगे तो वह भी यही कहेगा। मेरे पास तो आज तक सब यही बोलने वाले आए हैं। मुझसे आज तक किसी ने नहीं कहा कि स्वामीजी मेरा मन ठीक है। सब यही कहते हैं कि स्वामीजी मन में न जाने क्या-क्या होता है। मन का स्वभाव चंचल है। जैसे जल और हवा का स्वभाव बहना है, आग का स्वभाव जलना है, चंद्रमा का स्वभाव शीतलता है, सूर्य का स्वभाव गर्मी है, वैसे ही मन का स्वभाव चंचलता है। अगर चंचलता नहीं होगी तो मन भी नहीं होगा। मन का निश्चल और शान्त हो जाना लगभग असम्भव है। मन का एकाग्र हो जाना महादुष्कर काम है। इसलिए कबीरदासजी कहते हैं – मैं उन संतन का दास जिन्होंने मन मार लिया।

जिन्होंने अपने मन को अपने वश में कर लिया वे भगवान हो जाते हैं। राम और कृष्ण वही हैं। मन को वश में करना ही योग का, भक्ति का, मनुष्य के जीवन का लक्ष्य माना जाता है। मगर यह इतना सरल नहीं है। इसलिए मन के बारे में ज्यादा मत सोचो। जितना ज्यादा तुम मन के बारे में सोचोगे, तुम्हें उतनी ज्यादा पीड़ा होगी। जो लोग अपने मन के स्वभाव, चाल-चलन और गतिविधियों के बारे में ज्यादा सोचते हैं, उनको पीड़ा अधिक होती है। इसलिए मन के बारे में कम सोचो।

कर्मों की भूमिका

मन के बारे में सोचने के लिए समय कम मिले, इसलिए भगवान ने कर्म बनाये। कर्म में मन बहिर्मुखी हो जाता है, बाहर चला जाता है। आटा लाना, रोटी बनाना, सब्जी लाना, कपड़ा धोना, बीमार हैं तो डॉक्टर के पास जाना, इन सबसे मन बहिर्मुखी रहता है। जब मन बहिर्मुखी रहता है तब अच्छा लगता है।

यद्यपि अन्तिम लक्ष्य मन को अंतर्मुखी करना ही है, मगर प्रारम्भिक अवस्था में अंतर्मुखी करने से अवसाद होने लगता है। अंतर्मुखी स्वभाव वाले को मन की हर गतिविधि से पीड़ा होती है। मन चंचल हो तो पीड़ा होती है, मन शान्त हो तो भी पीड़ा होती है कि मुझे तो कुछ समझ में नहीं आ रहा है। ऐसा लगता है कि कोई चिन्ता ही नहीं है। इसलिए बहिर्मुखी रहो, संसार में मन लगाओ, बाल-बच्चों में मन लगाओ, रसोईघर में मन लगाओ। अंतर्मुखता बढ़ाने वाले काम कम करो। हमलोग जब संन्यास लेते हैं तब बारह साल तक अंतर्मुखी न होने देने के लिए कर्मयोग कराया जाता है। कर्मयोग में मनुष्य अपनी इन्द्रियों और मन को बहिर्मुखी रखता है।

मन अकेला कुछ कर ही नहीं सकता। वह तो बिजली की शक्ति की तरह है। अगर बिजली है, मगर बल्ब या तार नहीं तो क्या करोगे? कुछ नहीं कर सकते। उसी तरह मन को अभिव्यक्त करने के लिए इन्द्रियाँ माध्यम हैं। अभी तुम जो देख रहे हो, वास्तव में कौन देख रहा है? मन देख रहा है। तुम सुन रहे हो तो कौन सुन रहा है? मन सुन रहा है। कौन खा रहा है, कौन सो रहा है, कौन बैठा है, कौन खड़ा है, कौन दौड़ता है? केवल मन। पाँच ज्ञानेन्द्रियों और पाँच कर्मेन्द्रियों से मन बाहर झाँकता है। इन्द्रियाँ अपने आप में जड़ हैं। टेलीफोन थोड़े ही बात करता है, बात तो आदमी करता है। टेप-रिकॉर्डर का क्या फायदा

जब तक टेप नहीं भरोगे? इसलिए इन्द्रियों को मन का उपकरण मानते हैं। इन इन्द्रियों को व्यस्त रखने के लिए इनको कर्मयोग में लगाना पड़ता है।

वेदों में लिखा है – *'ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः, भद्रं पश्येमाक्ष-भिर्यजत्राः'*। रोज तो तुम लोग यह मंत्र पढ़ते हो कि मेरी आँख अच्छा देखे, कान अच्छा सुनें, इन्द्रियाँ अच्छी तरह से कर्मयोग करें। कर्मयोग क्या है? मन लगाकर शारीरिक काम करना, चाहे खुर्पी चलाओ, फावड़ा चलाओ, कुदाल चलाओ, चाकू से सब्जी काटो, सुई से कपड़ा सिलो, सफाई करो, झाड़ू लगाओ, मकान को साफ रखो, स्नान करो और यदि कोई काम न हो, तो दूसरे के घर जाकर उसके लिए कुछ करो, गुरु की सेवा करो। इसे कहते हैं कर्मयोग।

गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को शुरू-शुरू में कर्मयोग ही बताया, ज्ञानयोग तो बाद में बताया। ज्ञानयोग, भक्तियोग और राजयोग, ये सब तो अंतिम अध्यायों में आते हैं और संन्यास तो अठारहवें अध्याय में आता है। पहला अध्याय है विषाद योग और दूसरा है सांख्य योग। विषाद योग किसे कहते हैं? जब तक मन में विषाद नहीं आएगा, तब तक तुम्हारे अंदर मन को संभालने की इच्छा भी कैसे आएगी? अगर तुम्हें विषाद नहीं होता तो तुम मन के बारे में सोचते क्या? मन को सम्भालने की कोशिश आदमी तब करता है जब उसे विषाद होता है। विषाद नहीं होगा तो तुम्हें मन का ख्याल ही नहीं आएगा। मनुष्य अपने मन को नियंत्रित करने की चेष्टा कब करता है? जब मन उसे बहुत तंग करता है। जब मन बहुत तंग करता है, तभी तो मन को नियंत्रित करने का मन करता है न! इसलिए योग शुरू होता है विषाद से। गीता का पहला अध्याय विषाद योग है, हमलोगों के जीवन का भी पहला अध्याय विषाद योग है।

विषाद

विषाद दो तरह का होता है, एक कम और दूसरा अधिक। मौसम में देखते हो न, कहते हैं हवा का दबाव कम है या ज्यादा है। जैसे हवा में कम और ज्यादा दबाव होता है, वैसे ही मन में भी कम और ज्यादा दबाव होता है। दबाव कब आता है? बच्चे का दबाव, काम का दबाव, दुःख का दबाव, वासना का दबाव, गुस्से का दबाव, लड़की की शादी नहीं हो रही है, उसका दबाव, पैसा नहीं है और लड़का रोज पैसा माँगता है, उसका दबाव। वायु में दबाव होता है तो बरसात होती है, वैसे ही जब दिमाग में दबाव आता है, तब मन में

कई प्रकार के विचार आते हैं। जो चीज अच्छी लगती है, उससे दबाव नहीं होता, बल्कि उसमें मजा आता है।

जिस समय मन में गर्मी आती है, जब आदमी बहुत गुस्सा करता है, बदले की भावना, प्रतिहिंसा की भावना, 'मरने दो उसको', 'जान से मार देंगे', ऐसे विचार आने से मन के अन्दर जो दबाव होता है, उसे ही अधिक दबाव कहते हैं। प्रायः दबाव कम ही रहता है, लेकिन अगर अधिक दबाव ज्यादा देर तक टिके तो आदमी पागल हो सकता है। दिमाग के अन्दर करोड़ों नाड़ियाँ हैं, जिनमें विद्युत प्रवाह होता है। उसका भी करेंट और वोल्टेज होता है, जिसे डॉक्टर और वैज्ञानिक इलेक्ट्रो-एनसिफेलोग्राम (ई.ई.जी.) यंत्र से नापते हैं। यह यंत्र बता देगा कि तुम्हारे मस्तिष्क में उस समय क्या तरंग है। तुम्हारे मस्तिष्क में विषाद है कि नहीं, तुम्हारा दिमाग गर्म है या ठण्ढा। मान लो तुम बहाना करके लेटे रहो कि तुम सोये हुए हो, मगर हम एनसिफेलोग्राम लगा कर बता देंगे कि तुम सोये हुए नहीं हो, क्योंकि सोते समय दिमागी बिजली का वोल्टेज दूसरा होता है। जिस समय आदमी ध्यान में बैठता है, उस समय बिजली की क्रिया दूसरी होती है, और जब आदमी बड़ी चिन्ता या परेशानी में रहता है, तब उसके अन्दर बिजली का व्यवहार दूसरा रहता है। साधारण सोचने में, चिन्ता करने में, कम सोचने में और नहीं सोचने में, इन चारों में दिमाग का वोल्टेज अलग-अलग रहता है।

यह मन कोई छोटी-मोटी शक्ति नहीं, संसार की सबसे बड़ी शक्ति है। जितने बड़े-बड़े चमत्कार ऋषि-मुनियों ने दुनिया में किए हैं, वह कोई जादू-टोना नहीं, सब मन की शक्ति का कमाल है। जादू-टोना कुछ नहीं होता। जितने भी देवी-देवता हैं, सब मन के रूप हैं। अब मुश्किल यह है कि इस मन को रोको तो आदमी पागल हो जाता है, और मन को जबरदस्ती विषय-विलास में भेजो तो भी आदमी पागल हो जाता है। शादी कराओ, गृहस्थी बसाओ, तो पागल

हो जाता है। उसे बद्रीनाथ भेजकर रातभर पद्मासन में बैठा दो, तो भी पागल हो जाता है। इसे रोको तो पागल, छोड़ो तो पागल। क्या करें? लड़के को रोज पीटें तो भी वह बिगड़ जाता है और यदि स्वतंत्र छोड़ दें तो भी बिगड़ जाता है। यही मन का हाल है। कबीरदास जी ने लिखा भी है –

मन! तोहे केहि विध कर समझाऊँ।
घोड़ा होय तो लगाम लगाऊँ, ऊपर जीन कसाऊँ।
होय सवार तेरे पर बैठूँ, चाबुक देके चलाऊँ ॥
हाथी होय तो जंजीर गढ़ाऊँ, चारों पैर बँधाऊँ।
होय महावत तेरे पर बैठूँ, अंकुश लेके चलाऊँ॥

मन मैं तुमको कैसे समझाऊँ? मेरी समझ में तो आता नहीं है। घोड़ा होते तो लगाम लगा देता, पर तुम घोड़ा नहीं हो। हाथी होते तो जंजीर से बाँध कर रखता। हे भगवान! अब तो तुम ही इस मन से बचाओ। यह मेरे समझाने से नहीं समझता। शायद कबीरदास जी को भी यही समस्या रही होगी जो तुम लोगों को है। अगर समस्या नहीं रहती तो पद क्यों लिखते!

आखिर मन है क्या? ऋषि-मुनि कहते हैं कि मन परमात्मा की प्रचण्ड शक्ति है। एक उदाहरण से समझाते हैं। मान लो एक बड़ा कमरा है, जिसमें दो हजार वॉट का बल्ब जल रहा है। कमरा चारों तरफ से बिलकुल बन्द है, लेकिन एक जगह दरवाजे में दरार पड़ी हुई है और उस दरार में से वह तेज रोशनी थोड़ी-सी चमक कर बाहर दिखाई दे रही है। बस यही मन है। भगवान की प्रचण्ड शक्ति, जो इन्द्रियों के दरवाजे की दरार से तुमको प्राप्त हो रही है, वही मन है। ईश्वर ने ही मन को प्रकाशित किया है। खोपड़ी के माध्यम से जो तुम्हें अनुभव होती है, बस यही भगवान की शक्ति है। हाँ, यह शक्ति सम्पूर्ण नहीं, छोटे-से छेद से दिखाई देती है।

किसी के पास भी मन की इस समस्या का इलाज नहीं है। हमने इतना कह दिया, लेकिन कोई इलाज तो नहीं बता सके न! थोड़ा विषाद तो सबको होता है। समस्या तो यह है कि तुम लोग इतना पढ़-लिख गए हो, इतना जान गए हो कि यह अपने में एक समस्या बन गई है।

सबसे अच्छी चीज है कि घर-गृहस्थी में मन लगाओ। संसार में धन-दौलत, पति-पत्नी, बाल-बच्चे, घर-गृहस्थी जैसी चीजों में मन लगाना चाहिए, अंतर्मुखी नहीं रहना चाहिए। आदमी को एक उम्र के बाद ही अंतर्मुखी होना

चाहिए। हमारा तो बचपन से ही वैराग्य में बड़ा मन लगता था। जब हम स्वामी शिवानन्द जी के पास आए, तब हमारा रुझान उसी तरफ था। लेकिन सन् 1947 में स्वामीजी ने हमसे कहा कि कम-से-कम चालीस साल ठहरो। अभी कुछ मत करो, जो मंत्र दिया है, केवल उसकी पाँच माला जप करो। इसके अलावा बस आश्रम का काम करो, भवन बनाओ, टाईपिंग करो, योग सिखाओ, गीता पढ़ो, रामायण पढ़ो, उपनिषद् पढ़ो। तुम सब कुछ करो, मगर गम्भीर साधना मत करो। चालीस साल रुको, उसके बाद तुम अपना जम सकते हो, उसके पहले नहीं।

इसलिए चालीस साल तक हम केवल गुरुजी का दिया हुआ मंत्र जपते थे। हम तो मन्दिर तक नहीं जाते थे। बस शाम को सात बजे सो जाते थे और रात को बारह बजे उठते थे। नहा-धोकर अपने हाथ से अपने लिए चाय बनाते थे और टाइप-राईटर पर बैठ जाते थे। फिर एकाउंट्स देखते थे, लेख देखते थे, अनुवाद करते थे, पत्र-व्यवहार देखते थे, बैंक का काम देखते थे। साढ़े तीन बजे तक सब काम हो जाता था। उसके बाद फिर उठना, मिलना-जुलना, आश्रम की व्यवस्था देखना, बाहर जाना, यह सब करते थे। पर अब दूसरी चीजें करते हैं। अब तो हम चिट्ठी-पत्री भी नहीं देखते। कलम छुए हमें बरसों हो गए। जब भी मन लगता है, हम अपने भगवान का नाम जपते हैं, जैसा गुरुजी ने कहा है। इसके सिवा और कुछ काम नहीं करते। मेरे कहने का मतलब यही है कि मनुष्य को ऐसा जीवन बिताना चाहिए कि उसका मन कहीं-न-कहीं टिक कर रहे। मन को खाली नहीं रखना चाहिए क्योंकि खाली दिमाग शैतान का घर होता है।

सुख-दुःख और संतोष

हिन्दुस्तान के गरीब लोग हमेशा पैसे के लिये परिश्रम और संघर्ष करते हैं। धन-सम्पत्ति के अभाव में वे दुःखी हैं। यूरोप और अमेरिका के लोगों को पैसा, नौकरी, बीवी, घर, सब आराम से मिलता है, तो भी वे दुःखी हैं। जिसके पास नहीं है वह भी दुःखी है, जिसके पास है वह भी दुःखी है। यहाँ शादी नहीं होती, तो दुःखी हैं, वहाँ तो शादी बायें हाथ का खेल है, तो भी दुःखी हैं।

आखिर सुख का रहस्य क्या है? सुख गरीबी में है या अमीरी में? लोग कहते हैं कि संतोष में सुख है, मगर संतोष की परिभाषा क्या है? क्या संतोष केवल 'चलेगा' कहने से होता है, या मन में कोई एक केन्द्र होता है जिसे

संतोष कहते हैं? साधु-महात्माओं में भी संतोष नहीं दिखता, बड़े-बड़े विद्वानों में भी संतोष नहीं है।

यह भी देखा गया है कि जिन जातियों में असंतोष है, उन जातियों ने बहुत उन्नति की है। जो सामाजिक, राजनैतिक या चिकित्सा व्यवस्था से संतुष्ट नहीं हैं, उन्होंने उन्नति की है, और जिन्हें संतोष हो गया, उनकी उन्नति समाप्त हो गई। संसार में पिछले दो-तीन सौ सालों में जितने भी बड़े-बड़े आविष्कार हुए हैं, उनसे यही देखने को मिलता है। यहाँ केवल वैज्ञानिक आविष्कारों की ही नहीं, बल्कि मानव अधिकारों की बात भी हो रही है। स्त्रियों, कैदियों और वेश्याओं के अधिकारों की बात हो रही है। रेलवे स्टेशन पर जो अनाथ बच्चे घूमते रहते हैं, उनके अधिकारों की बात हो रही है। किसी कुँआरी लड़की को बच्चा हो गया, उसने उस बच्चे को फेंक दिया, उस उपेक्षित शिशु के अधिकारों की बात हो रही है।

संतोष में सुख है पर उन्नति नहीं है, असंतोष में दुःख है लेकिन उन्नति है। कितनी उन्नति की है उन लोगों ने। अंतरिक्ष में सैटेलाइट जाता है, उस सैटेलाइट में एक-एक साल तक लोग रहते हैं। उनके लिये पीने का पानी भी यहीं से जाता है। अभी हाल में अमेरिका ने कैसीनी नाम का सैटेलाइट छोड़ा है, जो करीब सात साल में शनि ग्रह पर पहुँचेगा। वहाँ जाकर वह गुब्बारे से मशीन उतारेगा, वह मशीन चित्र लेगी और फिर उन चित्रों को यहाँ भेजेगी। अभी कुछ दिन पहले मंगलग्रह पर पाथफाईंडर नाम का विमान उतारा गया। यह सब मनुष्य ने ही तो किया है न? इसे कमाल नहीं कहोगे क्या?

मनुष्य हमेशा से ज्ञान की प्राप्ति चाहता है, चाहे वह ज्ञान ईश्वर का हो या ईश्वर की सृष्टि का। महात्मा लोग ईश्वर का ज्ञान प्राप्त करने के लिये तप करते हैं और वैज्ञानिक लोग ईश्वर की सृष्टि की जानकारी के लिये तप करते हैं। दो ही तो चीजें हैं – एक ईश्वर, दूसरी ईश्वर की सृष्टि। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपनी किताब 'सत्यार्थ प्रकाश' में लिखा है कि वेदों में तीन सत्य बताये गये हैं – ईश्वर, जीव और जगत्। जगत् तो जड़ है, मगर यह जो जीव है वह जगत् को भी देखता है और ईश्वर को भी। जब जीव ईश्वर की तरफ देखता है, ईश्वर को जानने की कोशिश करता है और ईश्वर के बारे में चिंतन करता है तब उसे आध्यात्मिक कहते हैं। वही जीव जब जगत् को जानने की कोशिश करता है और जगत् के बारे में चिंतन करता है तब उसे वैज्ञानिक कहते हैं।

– 24 अक्टूबर 1997, रिखियापीठ

योग के आधार – अभ्यास और वैराग्य

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

योग में साधक को द्रष्टा की संज्ञा दी जाती है। द्रष्टा का अर्थ होता है वह व्यक्ति, जो सजगतापूर्वक अनुभव करे। अभी हम निज स्वरूप से दूर हो चुके हैं, क्योंकि हम कर्म, प्रकृति, गुण और माया के बन्धनों में आ गये हैं, लेकिन जब हम अपने आपको इन सबसे मुक्त करते हैं और अपने उस निर्गुण स्वरूप को प्राप्त करते हैं, जहाँ पर प्रकृति का कोई बन्धन न हो, तो वह है हमारी मूल अवस्था, निज स्वरूप में स्थित होना।

यह स्थिति कब होती है? जब चित्त की वृत्तियों का निरोध हो जाए। निरोध अपने अन्तःकरण को शान्त बनाने की अवस्था है। निरोध का अर्थ है विक्षिप्तता और चंचलता को शान्त करना। वृत्तियों का जब हम निरोध करते हैं तभी हमारे अन्दर का वह साक्षी पुरुष, अपने स्वरूप में अपने आपको स्थित करता है। पातंजल योगसूत्रों के अनुसार द्रष्टा वह है जो चित्त की वृत्तियों को रोकने का, उनका निरोध करने का प्रयास कर रहा है।

द्रष्टा हमारी चेतना का एक अंश है। किन्तु जब हम पूरी चेतना के ही भीतर उत्पन्न वृत्तियों को अपने नियन्त्रण में लाने का प्रयास कर रहे हैं, तब वह भाव कौन-सा है, जो इन्हें देख रहा है? आखिर वह भाव भी तो भीतर से उत्पन्न हो रहा है न? यदि वह भाव भीतर से ही उत्पन्न हो रहा है, तो उसमें कौन-सी विशेषता है कि वह द्रष्टा बन गया और इच्छा का रूप नहीं है? यदि आप चाहते हैं कि मैं अपने आपको नियंत्रित रखूँ, संयत रखूँ, तो वह आपका कौन-सा पक्ष है? इच्छा? आप इच्छा तो कर रहे हैं कि मैं अपने को संयत रखूँ, पर एक इच्छा के माध्यम से आप अपनी दूसरी इच्छा को कैसे संयत करेंगे? मन ही कह रहा है कि मैं अपने आपको नियन्त्रण में लाऊँ, और मन ही चंचल है, तो मन अपने आपको कैसे नियन्त्रण में लाएगा?

वृत्ति विषय और आकृति पर निर्भर है। जहाँ पर विषय नहीं है, जहाँ पर आकृति नहीं है, वहाँ पर सम्भवतया वृत्ति भी नहीं होगी। इसीलिए वृत्ति से जब हम गुण को हटा देते हैं, तब वह एक शक्ति का रूप लेती है। जब तक वृत्ति विषय और आकृति से एक होकर रहती है, तब तक उसमें शक्ति का रूप नहीं होता। यह शक्ति बाह्य नहीं, आन्तरिक शक्ति है। विचार वृत्ति नहीं

कहलाते। विचार केवल चेतना के अंग हैं, उसकी अभिव्यक्तियाँ हैं। विचार, भावना, इच्छा या कामना का सम्बन्ध वृत्ति से नहीं है। वृत्ति है जड़, आधार। यदि आप पेड़ को काट देंगे, अर्थात् मन को विचार शून्य, भावना शून्य और कामना शून्य बना देंगे, तो भी जब तक जड़ जमीन में है, तब तक पेड़ पुनः उगेगा। इसलिए वृत्ति को न विचार माना गया है, न इच्छा, न भावना, न वासना, न कामना इत्यादि। यह केवल एक आधार है। इसलिए वृत्ति का निरोध करना योग शास्त्र ने सम्भव माना है।

वृत्ति निरोध

वृत्तियों का निरोध कैसे किया जाएगा? हमारे जीवन की जितनी अभिव्यक्तियाँ हैं, विचार हैं, कर्म हैं, सद्भावना है, प्रेम है, करुणा है, राग है, द्वेष है – ये सब शाखाओं के रूप में हमें दिखलायी देते हैं। हमारे भीतर का यह वृक्ष इतना घना है कि इसका तना दिखलायी नहीं देता, जड़ नहीं दिखती, केवल टहनियाँ दिखलायी देती हैं। जब टहनी को पकड़ कर हम धीरे-धीरे तने की ओर आते हैं और फिर वहाँ से नीचे उतरते हैं, तब हमें जड़ का पता चलता है। इसलिए पुरुषार्थ प्रारम्भ होता है इच्छा से – 'मैं करना चाहता हूँ।' लेकिन बाद में जब उस अवस्था में पहुँच जाते हैं तो इस इच्छा का भी त्याग करना पड़ता है।

महात्मा बुद्ध अपने शिष्यों से कहा करते थे कि तुम मेरे पास निर्वाण के लिए आते हो, लेकिन एक समय आएगा जब तुम्हें निर्वाण की इच्छा भी

त्यागनी पड़ेगी। सन्त-महात्मा भी कहते हैं कि तुम मेरे पास आत्म-साक्षात्कार के लिए आए हो, लेकिन एक समय आएगा जब तुम्हें आत्म-साक्षात्कार की इच्छा भी त्यागनी पड़ेगी। केवल वर्तमान में जीना होगा, क्योंकि वर्तमान में जीने के बाद फिर हम वृत्तियों और विचारों का, दुःख, क्लेश, संताप और विषाद का संचय नहीं करते।

पुरुषार्थ करने की प्रक्रिया, जो इच्छा से शुरू होती है, बाद में संकल्प के रूप में परिणत हो जाती है। वह सजगता, जो शुरू होती है एक विचार के प्रति, बाद में विचार के रूप का त्याग कर देती है। वहाँ केवल सजगता का रूप रह जाता है। अभी सजगता में एक इच्छा छुपी है। भूख लगती है, हम सजग हो जाते हैं कि हमें भूख लग रही है। लेकिन इसके पीछे एक इच्छा है न? भोजन करके भूख को समाप्त करना। प्यास लगती है, हम सजग हो जाते हैं कि हमें प्यास लगी है। लेकिन प्यास की सजगता के पीछे एक इच्छा रहती है, पानी पीकर प्यास को शान्त करना। वह सजगता अन्त में द्रष्टा का रूप ले लेती है, और फिर अपने स्वरूप में चेतन अवस्था में स्थित हो जाती है, उससे एक हो जाती है, भिन्न नहीं रहती।

आप स्वयं अपने जीवन में देखिए, सुबह उठने से रात को सोने तक कितनी बार आपकी मनःस्थिति में परिवर्तन आता है। काम करते हैं, कभी अच्छा लगता है, कभी नहीं। कभी सोचते हैं कि रोज-रोज मुझे यहीं पर झाड़ू-पोछा लगाना पड़ता है। खाना खाते हैं, कभी अच्छा लगता है, कभी नहीं। यह जो अस्थिरता होती है, इसे कहते हैं सजगता में व्यवधान, जो इच्छा के रूप में, विचार के रूप में सामने आ रहा है। अगर आप सब चीजों के रहते हुए अपने को संयत बना सकते हैं, तो सजगता में बाधा नहीं आएगी, क्योंकि इससे इच्छा का अंश हट जाएगा, केवल सजगता रहेगी। बाद में उसी सजगता में आप निर्लिप्त अवस्था को प्राप्त कर लेंगे। ठीक है, खाना मिलता है, मिलता है; नहीं मिलता, नहीं मिलता। अतः जब सजगता निर्लिप्त हो जाए, विषयों में लिप्त न रहे, तब वह द्रष्टा का स्वरूप होगा। इस द्रष्टा-स्वरूप को प्राप्त करने के लिए आन्तरिक शुद्धि, आत्मसंयम और आन्तरिक स्पष्टता का होना आवश्यक है। यदि आत्म-संयम नहीं, आन्तरिक स्पष्टता नहीं, यदि हम आसक्ति रहित नहीं तो द्रष्टा कभी नहीं बन पायेंगे।

महर्षि पतंजलि ने चित्त की वृत्तियों के निरोध का उपाय बताते हुए कहा है – *अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः*। अभ्यास का अर्थ होता है किसी क्रिया

को बार-बार दुहराना और वैराग्य का अर्थ होता है, राग-रहित होना। अभ्यास और वैराग्य के द्वारा वृत्तियों का निरोध किया जा सकता है।

अभ्यास

अभ्यास की शर्तें भी होती हैं। यदि हम इन शर्तों को मानें तो यह कहा जा सकता है कि हम अभ्यास कर रहे हैं। सामान्य जीवन में अभ्यास हमारी एक मानसिकता से जुड़ा रहता है, वह है 'पसन्द'। यदि हम किसी चीज को पसन्द करते हैं, किसी चीज में हमारा मन लगता है, तो फिर पाँच मिनट के बदले हम एक घण्टे उस चीज को कर सकते हैं। एक घण्टा तो क्या, छः घण्टों तक वही चीज दुहरा सकते हैं। लेकिन हमारा मन न लगे, तो सोचते हैं कि जल्दी-से-जल्दी हम इस बला को टाल दें।

जप के समय क्या होता है? लोग हाथ में माला पकड़ते हैं। निर्देश मिला है, तीन माला जप करना। शुरू करते हैं, पन्द्रह दानों तक तो ठीक चला, उसके बाद देखते हैं, 'अरे! इतना बाकी है', फिर तीव्र गति से जपते हैं। कुछ दानों तक गति बढ़ती है, फिर देखते हैं, अभी तो समय बाकी है, गति मन्द हो जाती है, शरीर में यहाँ-वहाँ दर्द होने लगता है। इसे अभ्यास नहीं कहते।

अभ्यास में स्थिरता पहली आवश्यकता है। सरल भाषा में कहा जाये तो यह 'लगन' है। एक गति, जिसमें हमारा मन बन्ध जाये, अभ्यास कहलाती है। जब तक उस अभ्यास के द्वारा हमारी मानसिकता में परिवर्तन नहीं होता, हम उसे अभ्यास नहीं मान सकते। अभ्यास से जुड़ी एक अवस्था है, जिसे योगसूत्रों में वैराग्य का नाम दिया गया है।

वैराग्य

वैराग्य का अर्थ होता है राग-रहित होना, बिना राग के रहना। किसी विषय में लिप्त रहना राग है। यदि हम आपसे कहें कि आपको पवनमुक्तासन का ही अभ्यास एक साल तक करना है, तो क्या आप उसे स्वीकार करेंगे? नहीं करेंगे। राग में जब तक हम लिप्त रहते हैं, तब तक हमारा मन भटकता है। इच्छा-अनिच्छा, रुचि-अरुचि उत्पन्न होती है। इसी कारण हम कभी जोश में आते हैं और कभी ठण्ढे पड़ते हैं। जब हम अपने आपको राग-रहित बना सकते हैं, तब वह वैराग्य की स्थिति होती है। जब हम विषय में लिप्त रहते हैं, तब हमारी क्या अवस्था रहती है? आसक्ति की अवस्था। राग से काम

उत्पन्न होता है, वासना उत्पन्न होती है, इच्छा उत्पन्न होती है – ये सब राग से चुम्बक की तरह जुड़े हुए हैं। लेकिन यहाँ पर अब एक विचित्र खेल होता है। राग के विपरीत है द्वेष। द्वेष का अर्थ होता है विकर्षण। राग में तो आकर्षण है, लिप्तता है, और द्वेष में विषय से दूरी है, लेकिन फिर भी एक सम्बन्ध रहता है।

एक छोटा-सा उदाहरण है। मान लीजिए आपका पड़ोसी और आप, दोनों एक ही प्रकार का जीवन बिताते हैं। एक ही जगह पर काम करते हैं। एक बार आप दोनों जाते हैं, लॉटरी खरीदते हैं। संयोग से आपके पड़ोसी की लॉटरी का नम्बर आ जाता है। वह दस लाख रुपये जीत लेता है। आपके मन में क्या गुजरेगी उस समय? वह है द्वेष। द्वेष क्यों हुआ? इसलिए कि यहाँ पर तुलना हो रही है कि हम दोनों तो एक प्रकार के थे। बचपन से एक साथ पढ़े हैं, एक साथ शहर में आये हैं, एक ही जगह पर काम कर रहे हैं, लेकिन अचानक वह लखपति बन गया और मैं अभी तक अपने बोनस का ही इन्तजार कर रहा हूँ।

महर्षि पतंजलि कहते हैं कि तुलना की स्थिति द्वेष है और उस अवस्था के कारण फिर ईर्ष्या उत्पन्न होती है कि उसे मिला, मुझे क्यों नहीं मिला। मैं किस प्रकार से उसके बराबर या उससे अधिक सम्पत्ति का संचय करूँ। फिर ईर्ष्या शुरू होती है। इस तरह हम राग और द्वेष, दोनों को पकड़कर चलते हैं।

वैराग्य एक दूसरी मानसिकता है। यह अवस्था नहीं, मानसिकता है, इस बात को आप याद रखिये। मन का तटस्थ भाव, जो इच्छा की ओर भी न

जाये, अरुचि की ओर भी न जाये – इसको हम तटस्थता मानते हैं। तटस्थ वह है जिसने एक मध्यम-मार्ग अपने जीवन में स्थित कर लिया है। जब हम मध्यम-मार्ग में स्थित हो जाते हैं और भटकते नहीं हैं; न दायें तरफ, न बायें तरफ, तभी अभ्यास शुरू होता है। वैराग्य के साथ निरंतर अभ्यास की भी आवश्यकता होती है।

योग भी 'मध्यम-मार्ग' है। महात्मा बुद्ध ने इसे अपनाया, क्योंकि अपने जीवन में जब उन्होंने देखा कि तपस्या करने से भी, अपने शरीर को कृशकाय बना देने पर भी आत्मज्ञान की प्राप्ति नहीं हुई, तब उन्होंने खीर खायी। तत्पश्चात् उन्हें आत्मज्ञान मिला। कहने का तात्पर्य यह कि मन के तटस्थ भाव और उसके बाद अभ्यास के द्वारा ही हम अपने चित्त की वृत्तियों का निरोध कर सकते हैं।

यदि किसी अभ्यास को हम अपने लिए आवश्यक समझकर करते हैं, तो उसमें लगन होनी चाहिए। लगन की स्थिति मानसिक स्थिरता का प्रतीक है। सामान्य रूप से देखा जाए तो जब हम कोई काम करते हैं, तब हमारी इच्छा होती है कि जल्दी-से-जल्दी खत्म कर दिया जाए। हमारा मन कर्म या अभ्यास में नहीं रहता, बल्कि एक कदम आगे रहता है। उदाहरण के लिए आप सर्पासन का अभ्यास कर रहे हैं, लेकिन मन में सोच रहे हैं, मेरी पीठ दर्द कर रही है, स्वामीजी कब कहेंगे कि नीचे आ जाओ। और जैसे ही नीचे आते हैं, राहत की साँस लेते हैं।

यह तो एक उदाहरण है कि अभ्यास में मन रमता नहीं है। अभ्यास से एक कदम आगे, उसके बाद की अवस्था में चला जाता है। जप में मन लगता नहीं है। पाँच मिनट हुए नहीं कि सोचते हैं, कैसे हमारे चालीस मिनट पूरे हों और हम उठ सकें। काम में मन लगता नहीं है। सोचते हैं, इतना बड़ा आश्रम और मुझे इतनी लम्बी-चौड़ी सफाई की ड्यूटी मिली है, जल्दी-से-जल्दी खत्म करो। यह मानसिक अस्थिरता और चंचलता का प्रतीक है।

महर्षि पतंजलि कहते हैं कि अगर वृत्तियों का निरोध करना है, तो पहले आंतरिक चंचलता का दमन करना होगा। आन्तरिक चंचलता का दमन किये बिना अभ्यास सिद्ध नहीं हो सकता, क्योंकि जब तक इच्छा और अनिच्छा हमारी मानसिक अवस्था को प्रभावित करती रहेंगी, तब तक एकाग्रता को प्राप्त करना सम्भव नहीं है और जब तक एकाग्रता प्राप्त नहीं होती, व्यक्ति योगाभ्यास नहीं कर सकता।

कर्मों में कुशलता

गीता में योग के बारे में कहा गया है – *योगः कर्मसु कौशलम्*। कर्म में कुशलता को प्राप्त करना योग है। लेकिन कर्म में कुशलता को कैसे प्राप्त किया जाये, जब हम हमेशा हड़बड़ी में रहते हैं, जब हम हमेशा चंचल रहते हैं, और एकाग्र होने का तरीका भी हमें नहीं आता। जब हम अपने आपको एकाग्र करने का प्रयत्न करते हैं तो हमारे भीतर तनाव उत्पन्न होने लगता है। हम सोचते हैं कि एकाग्र होना एक मानसिक प्रयत्न है, लेकिन बात ठीक उल्टी है यहाँ पर। प्रयत्न में जबरदस्ती की नहीं, बल्कि सरलता और सहजता की अवस्था है। इस सरलता और सहजता की अवस्था को प्राप्त करने के लिए भी सजगता और अभ्यास की आवश्यकता होती है।

कभी अवसर मिले तो आप प्रयास करके देखियेगा। जो विषय आपको कठिन लगता है, ध्यान दीजिए और देखिये कि आपको कितना मानसिक परिश्रम करना पड़ रहा है उसको समझने के लिए। आप देखेंगे कि आप जितना मानसिक परिश्रम करते हैं, तनाव उतना ही बढ़ता है। फिर इस तनाव की स्थिति में एकाग्रता भंग हो जाती है और जहाँ एक बार एकाग्रता भंग हो जाए, वहाँ फिर कॉपी-किताब बन्द करके बाहर जा सकते हैं, दिमाग में कुछ बैठने वाला नहीं है।

एकाग्रता को प्राप्त करने के लिए योग में अनेक उपायों का सहारा लिया जाता है। मनोविज्ञान और योग-विज्ञान के अनुसार प्राणायाम का अभ्यास एकाग्रता को बढ़ाने के लिए उत्तम है। इस पर एक प्रयोग किया गया था। एक शिक्षक ने अपने विद्यार्थियों के सामने पेण्डुलम वाली घड़ी रख दी और उनसे कहा कि जब पेण्डुलम दाहिनी तरफ जाये तो तुम लोग श्वास लेना, जब पेण्डुलम बायीं तरफ जाये तो श्वास छोड़ना। इस प्रकार जब तालमेल बैठ गया तब शिक्षक श्वास छोड़ने के समय विद्यार्थियों को निर्देश दिया करते थे और जब विद्यार्थी श्वास लेते थे तो वे चुप हो जाते थे।

मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि जब हम श्वास छोड़ते हैं, तब हमारा मानसिक प्रतिरोध कम होता है और जब हम श्वास लेते हैं तो शारीरिक और मानसिक, दोनों रोध बढ़ते हैं। देखा गया कि इस प्रकार अभ्यास करने से स्मरण शक्ति में तीस प्रतिशत की वृद्धि होती है। इसी तरह कक्षा की शुरुआत में अगर आप सात बार भ्रामरी प्राणायाम करेंगे तो तनाव उत्पन्न नहीं होगा। आप खुद परीक्षा कीजिए अपने ऊपर, सफलता जरूर मिलेगी। जहाँ पर हमारे

मन में तनाव उत्पन्न न हो, वहाँ पर लगन या यत्न की स्थिति आ जायेगी। तनावरहित, एकाग्र, सहज, सरल लगन की अवस्था की प्राप्ति अभ्यास के लिए आवश्यक है।

अभ्यास के लिए महत्त्वपूर्ण सूत्र

अभ्यास को सिद्ध करने के लिए महर्षि पतंजलि कुछ आवश्यक शर्तें बताते हैं – *स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारासेवितोदृढभूमिः* अर्थात् दीर्घ काल तक आदर या आस्था के साथ निरन्तर अभ्यास करने से व्यक्ति अभ्यास में ठोस आधार को प्राप्त करता है। यहाँ पर अभ्यास की तीन शर्तें हैं। पहली शर्त है दीर्घकाल, दूसरी शर्त है निरन्तरता और तीसरी शर्त है सत्कारपूर्वक। जब तक इन तीन शर्तों का पालन न किया जाए, तब तक अभ्यास सिद्ध नहीं होता।

पहली शर्त, दीर्घकाल का सम्बन्ध हमारे स्वभाव के साथ, स्वभाव में परिवर्तन की आवश्यकता के साथ है। हमारा स्वभाव चंचल है और जब तक हमारा स्वभाव चंचल रहेगा, तब तक किसी प्रकार के कर्म में हम अपने आपको एकाग्र और स्थिर नहीं कर पायेंगे।

सामान्य अभ्यास में हमलोगों का उत्साह कभी-कभी मन्द पड़ जाता है। उत्साह में उतार-चढ़ाव होता रहता है। कभी जोर-जबरदस्ती भी होती है। हम अपने साथ जबरदस्ती करते हैं, मन के विचारों को दबा देते हैं, मन की चंचलता को दबा देते हैं, जिसके कारण वे और प्रबल रूप में बाहर निकलने का प्रयास करते हैं।

देखा गया है कि हर व्यक्ति अपने जीवन में दमन करता है, और दमन की या दबाने की स्थिति तभी उत्पन्न होती है जब मन के भीतर बहुत उत्साह रहे। हमारे भीतर इतना उत्साह है कि हम दूसरी चीजों को मानस-पटल पर आने नहीं देना चाहते और जो चीजें हमारे मानस-पटल पर आती हैं, या जिस चंचलता का अनुभव हमें होता है, हम उसे बार-बार हटाने या दबाने का प्रयत्न करते हैं। वही चीज फिर तामसिक रूप में परिवर्तित होकर हमारे सामने प्रकट होने का प्रयास करती है। तब भी अगर हम संघर्ष करते रहें, पुरुषार्थ करते रहें, उसे हटाते जायें, दबाते जायें कि 'नहीं-नहीं तुम्हें नहीं आना है, तुम बुरी चीज हो', तो तामसिकता में वृद्धि होती है। जितना हम दबायेंगे, हमारे स्वभाव में तामसिक वृत्ति उतनी ज्यादा जाग्रत होगी, जिसका अन्तिम परिणाम होगा आलस्य और प्रमाद।

यह तो मनोवैज्ञानिक सत्य है कि बौद्धिक रूप से मन को नियन्त्रण में नहीं लाया जा सकता, क्योंकि हमलोग अपने मन को तो जानते ही नहीं। अगर कोई अपने मन को जाने, तब तो वह अपने गुणों को नियन्त्रण में रख सकता है, अपनी चंचलता को शान्त कर सकता है, अपने मन को एकाग्र कर सकता है, स्थिर बना सकता है। लेकिन वह जानकारी तो हमें है नहीं। जानकारी के अभाव में तामसिकता प्रबल हो जाती है, और जब तामसिकता प्रबल होने लगती है तब हमारा उत्साह धीरे-धीरे ठण्ढा पड़ने लगता है।

योगी वही है जो अपने जीवन में कभी ढील न आने दे, जो अपने जीवन में कभी उत्साह की कमी न होने दे और इसके लिए सजगता आवश्यक है ताकि हम अपने भीतर की तामसिकता, राजसिकता और सात्त्विकता को पहले समझें। जब ये चीजें हमारी समझ में आने लगती हैं तब आन्तरिक स्वभाव में परिवर्तन होता है।

दूसरी शर्त है नैरन्तर्य। अन्तर का मतलब होता है भेद या अन्तराल। अभ्यासक्रम में अन्तराल नहीं होना चाहिए। अन्तर की विपरीत अवस्था है निरन्तर। बिना अन्तर के, बिना भेद के, बिना रुकावट के यह साधना चलती

रहनी चाहिए। बहुत बार क्या होता है कि आदमी यदि बीमार हो जाये तो उस अवस्था में अभ्यास अपने आप छूट ही जाता है। लेकिन योग की एक उच्च अवस्था को प्राप्त करने के बाद रोग की अवस्था में भी अभ्यास नहीं छूटता। पर यह आन्तरिक साधना है, शारीरिक नहीं। यह नहीं कि आपको तेज बुखार है और आप सूर्य नमस्कार करने लग जायें क्योंकि महर्षि पतंजलि ने कहा है कि निरन्तर अभ्यास होना चाहिए। यह ठीक नहीं है। लेकिन बुखार में आप मानसिक साधना तो कर ही सकते हैं। बिस्तर में लेटे-लेटे अपना जप तो कर सकते हैं। इससे मन बीमारी से तो हट जायेगा। बुखार या अन्य बीमारियों के समय जो नकारात्मक विचार आते हैं, उन्हें तो आप देख सकते हैं। लेटे-लेटे पन्द्रह-बीस मिनट अन्तर्मौन का अभ्यास कर सकते हैं। इससे बीमारी को प्रबल बनाने वाले नकारात्मक तत्त्वों एवं नकारात्मक विचारों में कमी आयेगी। मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि आप रोग के समय निरन्तर अभ्यास कीजिए, लेकिन योगियों के जीवन में, जो अपने को योग में स्थापित कर चुके हैं, नैरन्तर्य का अर्थ होता है, बिना बाधा के अभ्यास क्रम चलता रहे, चाहे हम योग में रहें, चाहे रोग में रहें, चाहे भोग में रहें।

साधना को उम्र से बाधित नहीं होना चाहिए, क्योंकि यह तो आपकी आन्तरिक स्थिरता, आन्तरिक स्वावलम्बन तथा एकाग्रता का प्रतीक है, विक्षिप्तता का नहीं। यदि हमारी साधना अबाधित रूप से चलती रहे, तो उससे धैर्य की प्राप्ति होती है। निरन्तरता का अभ्यास किया जाता है धैर्य प्राप्ति के लिए। दीर्घकालीन साधना का उतना महत्त्व नहीं, जितना निरन्तरता का है। इस बात का भी ख्याल रखियेगा। अगर आप निरन्तरता के साथ अभ्यास नहीं करते, तो पचास साल भी साधना कीजिए, उससे कुछ प्राप्त होने वाला नहीं है।

तीसरी शर्त है सत्कार। सत्कार का अर्थ होता है अभ्यास के प्रति सम्मान, प्रेम, निष्ठा, लगन और श्रद्धा। जिस प्रकार माता अपने बालक से प्रेम करती है, ठीक उसी प्रकार साधक को अपनी साधना से प्रेम करना चाहिए, अर्थात् वही भाव रहना चाहिए। बालक के प्रति माता का क्या भाव रहता है? प्रेम भाव रहता है, लगाव रहता है, विश्वास और सम्मान का भाव भी रहता है। साधना के प्रति श्रद्धा, समर्पण और आदर की भावना का अर्थ होता है कि हम इसे यन्त्रवत् न करें। जैसे मशीन अपने आप खट्-खट् चलती रहती है, उसमें कोई भाव नहीं रहता, साधना को वैसा नहीं होना चाहिए। तब जाकर वह फलवती होती है।

दिग्भ्रमित साधक

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

हजारों लोग एक विशेष पर्व पर पवित्र गंगा में स्नान के लिए ऋषिकेश आ रहे थे। एक आदमी स्टेशन की ओर भागते हुए मद्रास के लिए टिकट खरीद रहा था। उस पवित्र दिन, बिना गंगा स्नान किये वह ऋषिकेश छोड़ रहा था, यह देख एक तीर्थयात्री ने बड़ी हैरानी से पूछा, 'भाई, क्या आप इस पवित्र दिन ऋषिकेश में रहकर गंगा जी में स्नान नहीं करेंगे? क्या आप अपनी दक्षिण की ओर यात्रा को स्थगित नहीं कर सकते?' उस आदमी ने उत्तर दिया, 'मित्र, गंगा में क्या रखा है? मैंने गंगा में कई वर्षों तक दिन-रात स्नान किया है। मैंने सुना है कि जो भारत के सुदूर दक्षिण छोर में स्थित ताम्रपर्णी नदी में स्नान करता है, उसे बड़ा पुण्यफल मिलता है। इसलिए मैं वहाँ जा रहा हूँ।' यह सुनकर लोग उस दिग्भ्रमित तीर्थयात्री की मूर्खता पर हँसने लगे।

किसी महात्मा के साथ लम्बे समय तक रहने के बाद लोगों का उनके प्रति भक्ति-भाव प्राय: कम होने लगता है। हालाँकि दुनिया के सभी कोनों से हजारों-लाखों लोग उन महात्मा का दर्शन करने आते हैं, लेकिन *अतिपरिचयात् अवज्ञा* – उनके समीप रहने वाले चेले हमेशा ऐसा महसूस करते हैं कि उनका कल्याण तो किसी विशेष तीर्थयात्रा या साधना में निहित है, जिसके लिए उन्हें अपने गुरु को छोड़ना होगा। यह बड़े खेद की बात है। बेहतर होगा कि सन्त-महात्माओं से बहुत अधिक परिचय न हो, बल्कि जब तक उनके प्रति आपकी भक्ति दृढ़तापूर्वक स्थापित न हो जाए, तब तक अपने अन्दर उनके चरण-कमलों के प्रति भक्ति की ज्योति सदा ज्वलन्त रखें।

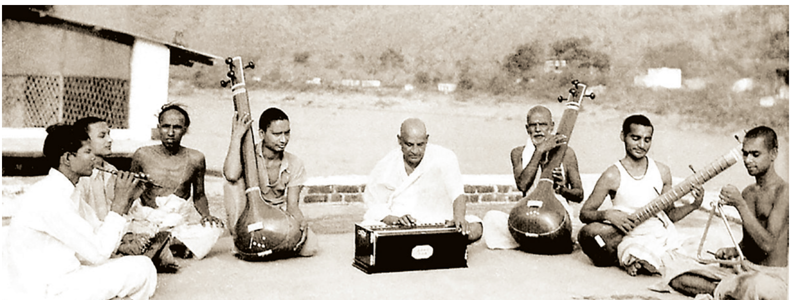

आत्मबल कहाँ से आता है

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

एक जमाने में किसी शहर में अटपटा न्याय चलता था। वहाँ के राजा ने एक बार किसी की झूठी शिकायतों पर विश्वास करके एक सीधे-सादे व ईमानदार वृद्ध योगी को कोड़ों की सजा सुना दी। जब उस जर्जर काया वाले योगी पर कोड़े बरस रहे थे तो वह हँस रहा था।

दर्शकों में खड़े एक सज्जन पुरुष से यह न देखा गया। जब वे योगी बिना वजह बहुत देर तक मार खाते रहे और मुँह से आह तक न की, तो उसने पूछा – 'बाबाजी, आप वृद्ध और इतने दुर्बल हैं, फिर भी इस मार को कैसे सहे जा रहे हैं?'

योगी बोले, 'विपत्ति को शरीर बल से नहीं, आत्मबल से सहा जाता है'।

आत्मबल के लिए योगाभ्यास के साथ ही साथ हर परिस्थिति में पॉज़िटिव या शुभ विचार करने का अभ्यास करना बहुत जरूरी है। जिसका सोचने का तरीका ठीक होगा उसे कोई भी परिस्थिति या किसी का दुर्व्यवहार दुःखी नहीं कर सकता। सुखी रहना चाहते हो तो ठीक से विचार करना सीखो।

पुष्पांजलि

16 सितंबर 2025 को संन्यासी धर्मरक्षित का स्वर्गवास हो गया। तीन दशकों से अधिक अवधि से वे गंगा दर्शन आश्रम से जुड़े थे, जिस दौरान वे आश्रम और उसकी गतिविधियों को निरंतर सहयोग और समर्थन देते रहे।

धर्मरक्षित जी के साथ उनकी पत्नी, संन्यासी शाश्वतज्योति, और दोनों बेटियाँ, संन्यासी देवांजलि और संन्यासी अमरगीत, आश्रम परिवार के अभिन्न अंग थे। दोनों बेटियाँ छोटी उम्र में ही बाल योग मित्र मंडल में शामिल हो गयीं, और कालान्तर में नयी पीढ़ी के बच्चों के प्रशिक्षण का दायित्व भी निभाया। पूरा परिवार स्वामी निरंजनानंद जी के साथ उनकी योग यात्राओं में जाता और वहाँ आवश्यक सभी छोटे-बड़े कामों में मदद करता। संन्यासियों के साथ-साथ वे भी स्वामीजी की टीम के अनिवार्य सदस्य थे।

सेवानिवृत्ति के बाद संन्यासी धर्मरक्षित की आश्रम में सहभागिता और सेवा कई गुना बढ़ गयी। वे और संन्यासी शाश्वतज्योति तो पादुका दर्शन

में सन् 2015 से आयोजित चातुर्मास अनुष्ठान के मानो हृदय और आत्मा थे। सबेरे की योग कक्षा से लेकर दोपहर के मंत्र साधना, रामचरितमानस मासपारायण और सत्संग तक की सभी गतिविधियों में उनकी निरंतर उपस्थिति, हर कार्यक्रम के सुचारू संचालन और सफलता को सुनिश्चित करती। वे हर जगह मौजूद रहते और मदद के लिए हमेशा तत्पर रहते थे।

जब संन्यास पीठ ने मासिक संक्रांति दान अनुष्ठान शुरू किया तो धर्मरक्षित जी आश्रम और समाज के उपेक्षित वर्गों के बीच सेतु बन गए। वे हर महीने पैदल और स्कूटर पर मुंगेर की सड़कों पर घूम-घूम कर विभिन्न वर्गों के लोगों से मिलते और उन्हें संक्रांति दान प्राप्त करने में मदद करते। नगर भर से हर महीने 250 लोगों को इकट्ठा करना कोई छोटी बात नहीं, फिर भी उनका हृदय उन लोगों के साथ था जिन्हें समाज प्राय: उपेक्षित कर देता है। जब ये लोग अपना प्रसाद लेकर बाहर निकलते, तो धर्मरक्षित जी के चेहरे पर मानो उनकी खुशी की परछाई झलकती थी।

श्री स्वामी सत्यानंद जी के जन्म शताब्दी वर्ष से संन्यासी धर्मरक्षित 'विद्या दान' की परियोजना में जी-जान से जुट गये, जिसे नगर के बच्चों को मौलिक शिक्षण सुविधाएँ दिलाने के लिए शुरू किया गया था। मुंगेर के सभी सरकारी

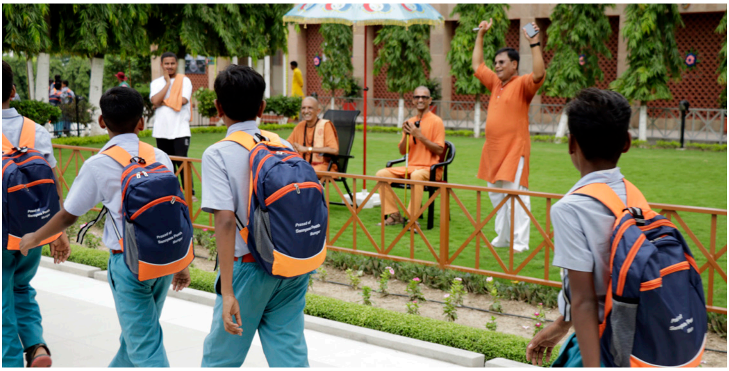

प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालयों का दौरा करते हुए वे विद्यार्थियों, शिक्षकों और कर्मचारियों को गंगा दर्शन आने के लिए आमंत्रित करते। इस परियोजना को क्रियान्वित करने में निश्चित रूप से बहुत परिश्रम लगता और बहुत-सी बाधाएँ भी आतीं, फिर भी वे मुस्कान भरे चेहरे और प्रेम भरे हृदय से सब कुछ संभाल लेते। उस साल 18,000 से ज़्यादा बच्चे अपनी पीठ पर प्रसाद का भारी बैग और मुस्कुराते चेहरों पर नीली टोपी डाले गंगा दर्शन से बाहर निकले। संन्यासी धर्मरक्षित के लिए मानो वे उनके अपने बच्चे बन गए थे।

बिहार योग विद्यालय के महासचिव के रूप में संन्यासी धर्मरक्षित ने आश्रम के संस्थागत दायित्वों का बखूबी निर्वहन करते हुए दैनिक गतिविधियों में भी सक्रिय भाग लिया – वे अतिथियों से मिलते, उनकी शंकाओं का समाधान करते और सभी को अपना समय एवं सहयोग मुक्तहस्त वितरित करते।

संन्यासी धर्मरक्षित को उनकी सद्भावना, सौम्यता, करुणा और विनोदशीलता के लिए हम सभी हमेशा याद रखेंगे। मुंगेर के हर कोने में मौजूद समाज के उन सभी लोगों को, जिनका उन्होंने दिल जीता था और जिनके वे मित्र बन गए थे, उनकी कमी जरूर खलेगी। आश्रम परिवार के सभी सदस्यों की हार्दिक प्रार्थनाएँ उनकी आगे की यात्रा में उनके साथ हैं।

सकारात्मकता के स्रोत

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

यम और नियम मन को सकारात्मकता एवं प्रेरणा से भरने वाले सद्गुण, आचरण, अभिव्यक्तियाँ और स्थितियाँ हैं। लोग समझते हैं कि यम और नियम नैतिकता और सदाचार का पाठ पढ़ाते हैं, लेकिन वास्तव में वे आपके स्वभाव के सकारात्मक आयाम से आपके सम्बन्ध के विकास को दर्शाते हैं, और साथ ही वे नकारात्मकता का प्रतिकार भी करते हैं। वे आपको उस सकारात्मक दिशा की ओर ले जाते हैं जिसकी आप तहे-दिल से आकांक्षा करते हैं। यम आपके अन्दर प्रविष्ट होकर आपको भीतर से परिवर्तित करते हैं, जबकि नियम वे बाह्य कर्म और व्यवहार हैं जिनके द्वारा आप उस सुन्दर आन्तरिक परिवर्तन को बाहर अभिव्यक्त करते हैं।

दान सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण सूचना

आश्रम के लिए दान राशि केवल निम्नलिखित श्रेणियों के अन्तर्गत स्वीकार की जाएगी –

1. **सामान्य दान**
   जो बिहार स्कूल ऑफ योग, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट अथवा योग रिसर्च फाउण्डेशन को दिया जा सकता है और जिसका उपयोग यौगिक गतिविधियों के विकास एवं संवर्द्धन के लिए किया जाएगा।

2. **मूलधन निधि के लिए दान**
   बिहार स्कूल ऑफ योग, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट अथवा योग रिसर्च फाउण्डेशन की मूलधन निधि के लिए। **मूलधन निधि** से प्राप्त ब्याज राशि का उपयोग संस्था/न्यास की सभी गतिविधियों के लिए किया जाएगा।

3. **सी.एस.आर. दान**
   जिसका उपयोग सी.एस.आर. गतिविधियों के लिए किया जाएगा।

इसलिए भक्तों से निवेदन है कि वे केवल उपर्युक्त श्रेणियों के अन्तर्गत अपनी दान राशि भेजें।

बिहार स्कूल ऑफ योग को दान किसी भी निम्नलिखित लिंक पर क्लिक करके दिया जा सकता है।

SB Collect Online **HDFC Online**

आप चेक, डी.डी. अथवा ई.एम.ओ. द्वारा भी दान दे सकते हैं जो **बिहार स्कूल ऑफ योग, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट** या **योग रिसर्च फाउण्डेशन** के नाम से हो और मुंगेर में देय हो।

दान राशि के साथ एक पत्र संलग्न रहे जिसमें आपके दान का प्रयोजन, डाक पता, फोन नम्बर, ई-मेल और PAN नम्बर स्पष्ट हों।

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट

संन्यास दर्शन

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

पृष्ठ 434, ISBN: 978-93-81620-12-0

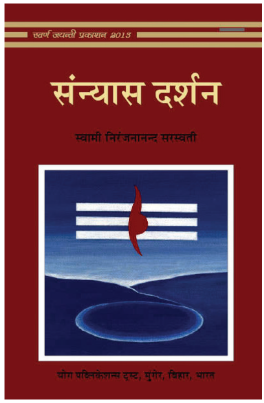

उपलब्ध

संन्यास दर्शन में आध्यात्मिक जीवन को समर्पित प्राचीन एवं अर्वाचीन संन्यास परम्परा का सविस्तार वर्णन किया गया है। इस पुस्तक में संन्यास-वंश-परम्परा, संन्यास के उद्गम, आश्रम-व्यवस्था, संन्यास की अवस्थाओं, पारम्परिक नियमों एवं शर्तों के साथ-साथ संन्यास की आधुनिक अवधारणा एवं वर्त्तमान जीवन में संन्यास पर प्रकाश डाला गया है। पुस्तक के अन्तिम खण्ड में पाँच मुख्य संन्यास उपनिषदों पर स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती की व्याख्या का भी समावेश किया गया है।

अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें –
योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, गरुड विष्णु, पी.ओ. गंगा दर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201
दूरभाष : 9162783904, 9835892831 या **www.satyamyogaprasad.net** वेबसाइट देखें।

जवाब के लिए अपना पता लिखा, डाकटिकट लगा लिफाफा भेजें, अन्यथा आपके आवेदन पर विचार नहीं किया जाएगा

वेबसाइट और एप्प

www.biharyoga.net

बिहार योग पद्धति की मुख्य वेबसाइट पर बिहार योग, बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान संबंधी जानकारियाँ उपलब्ध हैं।

सत्यम् योग प्रसाद

बिहार योग परम्परा के समस्त ऑडियो, वीडियो तथा पुस्तक प्रकाशन प्रसाद रूप में *satyamyogaprasad.net* वेबसाइट पर उपलब्ध हैं जिन्हें इस QR code को स्कैन करके देखा जा सकता है। ये *Android* एवं *iOS* उपकरणों पर एप्प के रूप में भी उपलब्ध हैं।

यौगिक जीवनशैली साधना

स्वस्थ जीवन हेतु रचित यह कार्यक्रम *biharyoga.net* तथा *satyamyogaprasad.net* पर उपलब्ध है।

योगा एवं योगविद्या ऑनलाइन

www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yoga-magazines/
www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yogavidya/

योगा एवं योगविद्या पत्रिकाएँ *Android* एवं *iOS* उपकरणों पर एप्प के रूप में भी उपलब्ध हैं।

अन्य एप्प (Android एवं iOS उपकरणों के लिए)

- योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट की लोकप्रिय पुस्तक, ए.पी.एम.बी. अब सुविधाजनक एप्प के रूप में उपलब्ध है
- *Bihar Yoga* एप्प साधकों के लिए प्राचीन और नवीन यौगिक ज्ञान आधुनिक ढंग से पहुँचाता है
- *For Frontline Heroes* एप्प कोरोनावायरस के विरुद्ध अभियान में संघर्षरत कार्यकर्ताओं के लिए सरल योग अभ्यास प्रस्तुत करता है जो महामारी से उत्पन्न तनाव को सम्हालने में सहायक हैं

• Registered with the Registrar of Newspapers, India
Under No. BIHHIN/2002/6306

ISSN 0972-5725

योगपीठ कार्यक्रम एवं योग विद्या प्रशिक्षण 2025

बिहार योग विद्यालय योगविद्या प्रशिक्षण

जनवरी–दिसम्बर	*आश्रम जीवन प्रशिक्षण*
सितम्बर 22–30	*राज योग एवं भक्ति योग प्रशिक्षण*
अक्टूबर 3–11	*हठ योग एवं कर्म योग प्रशिक्षण*
नवम्बर 1–15	*प्रगतिशील योग विद्या प्रशिक्षण*
नवम्बर 16–जनवरी 30 2026	*संन्यास अनुभव (राष्ट्रीय/अन्तरराष्ट्रीय साधकों के लिए)*

बिहार योग भारती योगविद्या प्रशिक्षण

नवम्बर 1–दिसम्बर 31	*द्विमासिक यौगिक अध्ययन (अंग्रेजी)*

मासिक कार्यक्रम

प्रत्येक शनिवार	*महामृत्युंजय हवन*
प्रत्येक 4, 5 एवं 6 तारीख	*गुरु भक्ति योग*
प्रत्येक 12 तारीख	*अखण्ड रामचरितमानस पाठ*

अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिए तथा योगविद्या पत्रिका को ऑनलाइन देखने के लिए बिहार योग की वेबसाइट – biharyoga.net पर जायें या बगल के QR code को स्कैन करें